डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु'

मनीषियों के दृष्टि में **डॉ० सुशीलकुमार पाण्डेय** 'साहित्येन्दु' कृत 'कौण्डिन्य'

पद्मभूषण डॉ० सत्यव्रत शास्त्री, ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त (पूर्व कुलपति श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय पुरी उड़ीसा)– कौण्डिन्य एक सुन्दर काव्य है, जिसका कथानक भी सुन्दर है, प्रस्तुति भी सुन्दर है, वर्णन भी सुन्दर है, रस–योजना भी सुन्दर है।

२९–०३–२००३ ई०

डॉ० सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव (पूर्व कुलपति इलाहाबाद विश्वविद्यालय)– यह कृति जहाँ एक ओर इतिहास–पुराण–परम्परा तथा लोकोत्तरानन्ददायिनी काव्य–कला का मञ्जुल सामञ्जस्य प्रस्तुत करती है, वहीं भारतीय संस्कृति की स्वर्णिम समृद्धि की यशोगाथा के रूप में भी अपनी अमिट छाप छोड़ती है।

२१–०२–२००१ ई०

अभिराज डॉ० राजेन्द्र मिश्र (पूर्व कुलपति सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी)– इलाहाबाद, वाक् सिद्धरचनाकार डॉ० सुशीलकुमार पाण्डेय ने महानायक कौण्डिन्य को अमरत्व देने के ध्येय से १८सर्गों का एक सर्वथा अस्पृष्ट अननुभूत एवं असंस्तुत काव्य लिखा है। कौण्डिन्य काव्य हिन्दी की प्रातिभ रचना धर्मिता में एक नया अध्याय जोड़ेगा।

२४–११–१९८४ ई०

वैदिक वाङ्मय के विलक्षण विद्वान्
कारयित्री-भावयित्री प्रतिभा सुसम्पन्न
नानापुराणनिगमागमज्ञ प्रो० महावीर
अग्रवाल (संस्कृत विभाग) उपकुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार के सारस्वत एवं करकमलों
में समीक्षार्थ / शोधार्थ / उन्नयनार्थ
सादर समर्पित

सविनय
सुशील कुमार पाण्डेय
साहित्येन्दु
पटेलनगर कादीपुर
सुलतानपुर उ.प्र.
228145
मो. 9532006900

11-7-12
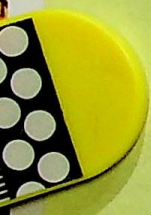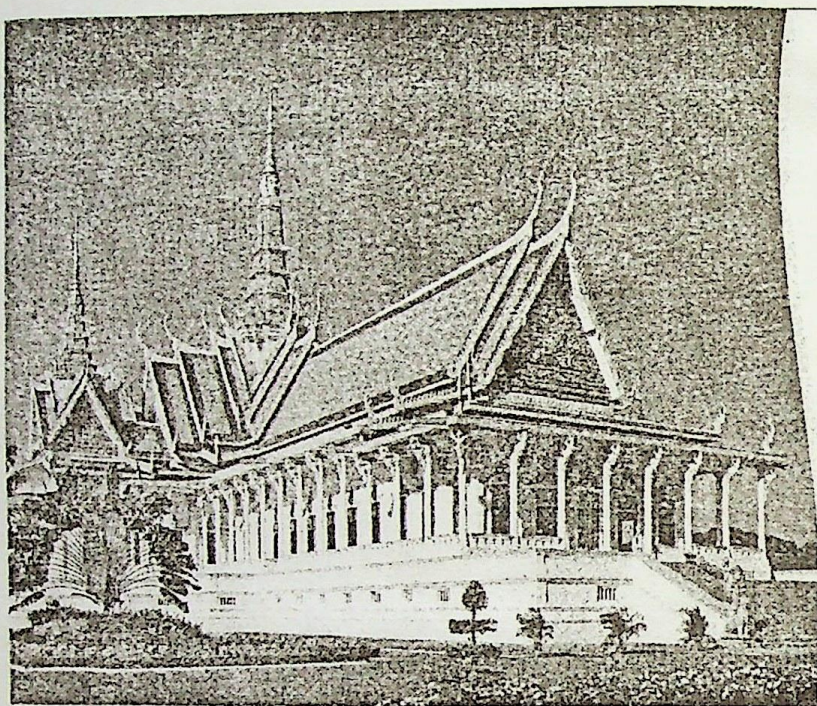
कौण्डिन्य

Royal Palace Phnom Penh (Combodia)

काम्बोडिया की राजधानी नोमपेन्ह स्थित राजभवन

कौण्डिन्य

डॉ० सुशीलकुमार पाण्डेय "साहित्येन्दु'
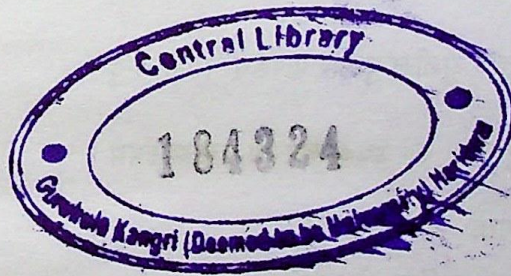
कौण्डिन्य साहित्य सेवा समिति

पटेल नगर, कादीपुर, सुलतानपुर उ०प्र०

ISBN : 978-81-8465-705-0

कौण्डिन्य

(हिन्दी महाकाव्य)

भारत तथा दक्षिण पूर्व एशिया के प्राचीन सांस्कृतिक सम्बन्धों पर आधारित
(विशेषतः कम्बोडिया के सन्दर्भ में)

कवि ; डॉ०सुशीलकुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु'

प्रथम संस्करण : २०१२ ई०

ग्रन्थमूल्य : रु० ४५० चार सौ पचास रुपये

प्रकाशक

कौण्डिन्य साहित्य सेवा समिति

पटेलनगर, कादीपुर, सुलतानपुर उ०प्र०

मुद्रक : एकेडमी प्रेस, दारागंज, इलाहाबाद

फोनः २५००९७०

KAUNDINYA

HINDI EPIC

Dr. Sushil Kumar Pandey 'Sahityendu'

Kaundinya Sahitya Sewa Samiti

Patel Nagar Kadipur, Sultanpur, U.P.

India – 228145

ISBN : 978-81-8465-705-0

KAUNDINYA

Hindi Epic

About the ancient cultural relationship between India and South East Asia (especially in the reference of Combodia)

Dr. Sushil Kumar Pandey 'Sahityendu'

First Edition : 2012 A.D.

Price: 450/- Four and fifty Rupees only

Published by

Kaundinya Sahitya Sewa Samiti

Patel Nagar Kadipur

Sultanpur. U.P.

India-228145

Printed at : Academy Press, Daraganj, Allahabad.

समर्पण

'वसुधैव कुटुम्बकम्' के उद्घोषकों तथा सुवर्ण-भूमि के रक्त सम्बन्धियों को (विशेषतः कम्बोडियाई भाई बहनों को)

Dedication,

To the followers of "whole earth is family"

and

Blood relatives of Suvarna Bhoomi

(especialy to the Combodion brothers and sisters)

गङ्गा दशहरा
०९-०६-१९८४ई०

डॉ० सुशीलकुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु'
कादीपुर, सुलतानपुर
उ०प्र०- २२८१४५
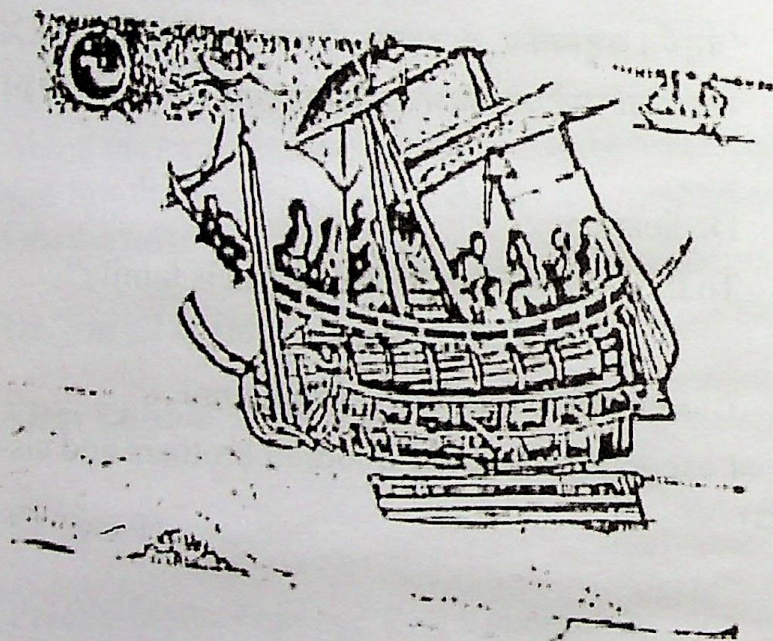
बोरोबुदुर की भित्ति पर अंकित एक प्रस्तर चित्र (भारतीय आवासकों का जावा की ओर प्रस्थान)

(श्री राधाकुमुद मुकर्जी के सौजन्य से प्राप्त-भाग २ पृष्ठ १९३)

वृहत्तर भारत (१९६९ संस्करण, चन्द्रगुप्त वेदालंकार से साभार)

१- भारत और सुदूरपूर्व का सांस्कृतिक तथा व्यापारिक सम्बन्ध
सुदूरपूर्व में भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास प्रो० बैजनाथपुरी
पृ० ४५१ से साभार

स्वतंत्र भारत (समाचार पत्र, लखनऊ) के उपहार अंक १४ जुलाई १९८५ से साभार
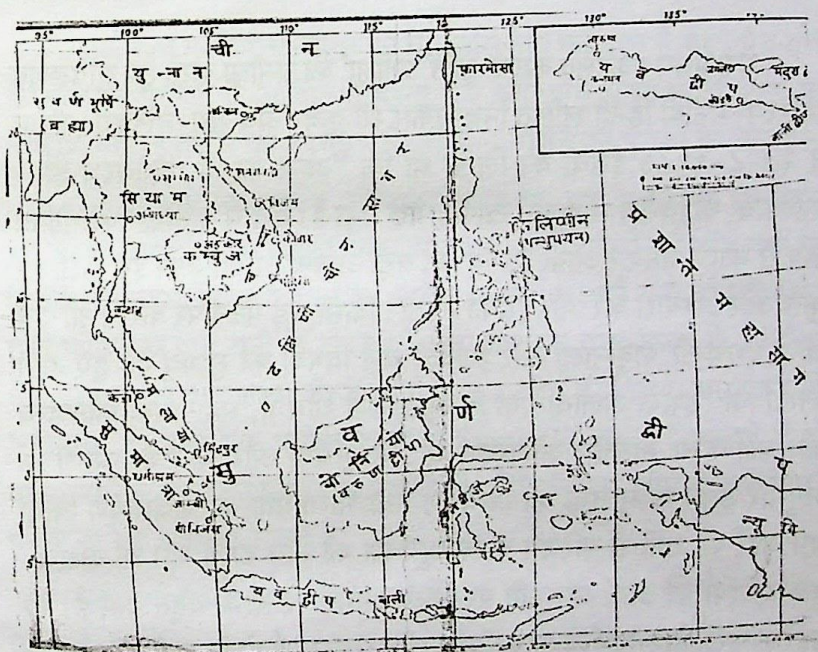
दक्षिण–पूर्वी और दक्षिण एशिया में भारतीय संस्कृति, डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार से साभार

महानायक कौण्डिन्य के सन्दर्भ में

मेरी प्रथम प्रकाशित काव्य-कृति 'प्रतीक्षा' की समीक्षा करते हुए सुविख्यात साहित्य-मनीषी हिन्दी ललित निबन्धकार श्री कुबेर नाथ राय-नलबरी-असम ने २७-८-१९८३ ईसवी को लिखा था कि "आज का तो वातावरण ही - काव्यत्व' के विरोध में कसम खाकर पीछे पड़ा है। ऐसे में 'प्रतीक्षा' जो घोषित रूप से काव्य बनकर आयी है, पढ़ कर बड़ा आनन्द आया। आप इस शैली पर कुछ और अभ्यास करें और इसका उपयोग किसी बड़े पैटर्न पर करें"। श्री राय जी ने दमयन्ती, शकुन्तला और सावित्री जैसे विषयों का सुझाव देते हुए आगे लिखा कि "इसके अलावा एक बिल्कुल नयी थीम है, महानायक कौण्डिन्य की। कौण्डिन्य भारतीय कोलम्बस था। कम्पूचिया और चीन के पुराणों के अनुसार उसने कम्पूचिया का अन्वेषण तथा भारतीयता का बीजारोपण किया था। वहाँ की रानी से परिणय करके सूर्यवंश की नींव डाली थी। यों दक्षिण-पूर्व-एशिया की आर्य-संस्कृति पर पाठ्य सामग्री हिन्दी में बहुत कम है। पूरे बृहत्तर भारत के सन्दर्भ में आपकी यह थीम महत्वपूर्ण होगी। कथा की स्वतन्त्र पुनर्रचना मैंने अपनी पुस्तक 'मनपवन की नौका' में की है। अन्तिम निबन्ध कौण्डिन्य गाथा। कोई इस थीम पर एक महाकाव्य या काव्य या नाटक लिखने का प्रयास करे तो मुझे कोई एतराज नहीं होगा।।"

मैं विचार करता रहा कि किस प्रकार इस सुझाव का पालन किया जाय। कौण्डिन्य के विषय में जनसामान्य को क्या कहा जाये विद्वत् -समाज में बहुत से अपरिचित हैं। उसकी निःस्वार्थ सेवाएँ मानवता के लिए वरदान ही नही आलोक-स्तम्भ भी हैं। मैंने पत्र के माध्यम से इस सन्दर्भ में कुछ स्पष्टीकरणों की जिज्ञासा प्रकट की, जिसके उत्तर में श्री राय जी ने लिखा-

सुवर्णभूमि-सुवर्णद्वीप- दोनों शब्दों को इतिहास में भिन्न पर समानार्थक मानते हैं। यों 'सुवर्ण भूमि' बर्मा-कम्पूचिया है तथा 'सुवर्णद्वीप' शेष पूर्वी द्वीप समूह। परन्तु काव्य की दृष्टि से दोनों को हम एक ही मान सकते हैं, पर वे प्रतीक हैं वृहत्तर भारत के। काव्य तो इतिहास-भूगोल नहीं है। कौण्डिन्य ऐतिहासिक व्यक्ति होते हुए भी एक 'प्रतीक' है जैसे कामायनी का 'मनु' He represents a long historical process not any particular history भारत की विस्तारमुखी आत्मा 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का प्रतीक।

जहाँ तक कौण्डिन्य-गाथा की ऐतिहासिकता का प्रश्न है वह चीन तथा कम्यूचियन पुराणों पर आश्रित है परन्तु मेरी कौण्डिन्य गाथा तो इतिहास का विवरण नहीं, इतिहास का उपवृंहण है। चीनी-कम्यूचियन पुराणों के अनुसार-

जम्बूद्वीप से एक ब्राह्मण कौण्डिन्य आया था। वह अश्वत्थामा का शिष्य था, वह अश्ववत्थामा का त्रिशूल लेकर आया था। जहाँ उसकी तरी भिंड़े वहीं पर त्रिशूल फेंक जमीन दखल करने का आदेश था उसे। तट की रानी का प्रतिरोध- तथा कौण्डिन्य द्वारा रानी के ऊपर (वे लोग तब तक वस्त्र-कला से अरिचित थे- पर गात को वल्कल से ढँकते थे।) अपने उत्तरीय का निक्षेप। बस इतना ही 'इतिहास' है। आप एक प्रतीकमहाकाव्य Symbolic Epic लिख रहे हैं तो आप उसमें कल्पना का प्रयोग कर सकते हैं। कौण्डिन्य जम्बूद्वीप से क्यों गया? इसके अनेक उत्तर हो सकते हैं।

महानायक कौण्डिन्य के सन्दर्भ में एक उत्तर वह होगा जो मैंने कल्पित किया है। आप या कोई भी इस Myth में संशोधन के लिए स्वतन्त्र है। भारतीय पुराणों से यह गाथा मुझे नहीं मिली है। यह South East Asia की पुराण-परम्परा से पायी है।

अगस्त्य का उत्तरकालीन जीवन तथा कौण्डिन्य-गाथा को उस वर्ग के पुराणों में क्या जगह होगी जो समुद्र-यात्रा को 'महापाप' मानकर बैठ गया। आपका नायक प्रतीक है 'भारतीय-संस्कृति की सार्वभौम विकास-यात्रा का। तब वह जाने-अनजाने अनेक अगस्त्यों और कौण्डिन्यों का निचोड़ होगा। मूल बात यही है।"

मैंने विषय-वस्तु की गम्भीरता के कारण जब कुछ प्राचीन ग्रन्थों एवं प्राचीन इतिहास की पुस्तकों का अवलोकन किया तब इस विषय में एक क्षीण

किरण का आभास हुआ जिसका उल्लेख करना प्रासङ्गिक होगा।

सुवर्ण-भूमि- भागवत पुराण में 'भूमि-काञ्चन्य' का उल्लेख आया है-

यावन्मानसोत्तर मेर्वोत्तरं तावती भूमिः काञ्चन्याऽऽदर्शतलोपमा।

यस्यां प्रहितः पदार्थो न कथञ्चित्पुनः प्रत्युपलभ्यते तस्यात्सर्व-सत्वपरिहताऽऽसीत् ।। (५-२०-३५) गीता प्रेस गोरखपुर

"मेरू से लेकर मानसोत्तर पर्वत तक जितना अन्तर है, उतनी ही भूमि शुद्धोदक समुद्र के उस ओर है। उसके आगे सुवर्णमयी भूमि है, जो दर्पण के समान स्वच्छ है। इसमें गिरी हुई कोई वस्तु फिर नहीं मिलती, इसलिए वहाँ देवताओं के अतिरिक्त और कोई प्राणी नहीं रहता।।"

उक्त भूमि काञ्चन्य से सुवर्ण भूमि की समीकरण सम्भव है।

वाल्मीकीय रामायण के किष्किन्धाकाण्ड के चालीसवें सर्ग में सुग्रीव, वानरों को सीता की खोज करने के लिए पूर्व दिशा में भेजते हुए अनेक भौगोलिक तथ्यों का वर्णन करते हैं जिनसे सुवर्ण भूमि की सबल सम्भावना की ज़ा सकती है कि सुवर्ण भूमि भारत के पूर्व (दक्षिण-पूर्व) में स्थित है। 'क्षीर-सागर (श्लोक सं०,४३) के पश्चात् जलोद सागर (४८) की स्थिति कही गयी है। उसके आगे सुवर्णमयी शिलाओं से सुशोभित कनक की आभा वाला महान् पर्वत (५०), सुवर्ण मय उदय पर्वत (५६), सौमनस नामक सुवर्णमय शिखर (५७), सुवर्णमय उदयाचल (६३) से युक्त क्षेत्र है। इसके आगे पूर्व दिशा अगम्य है (६६)।' गीता प्रेस गोरखपुर।

डॉ० बैजनाथ पुरी- तीसरी शताब्दी ईसवी में फूनान (कम्बोडिया) में नियुक्त चीनी राजदूत कैंगटाई ने फूनान में प्रचलित कौण्डिन्य (हुएनटिएन) की गाथा का उल्लेख किया है। सुदूर पूर्व में भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास' पृ० १६५ तथा १७० हिन्दी समिति उत्तर प्रदेश शासन-राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन हिन्दी भवन लखनऊ, संस्करण १९७५

श्री फ्योदोर कोरोव्किन- दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ भारत के विशेषतः घनिष्ठ सम्पर्क थे। इन देशों में लिपि, शिल्प और ज्ञान-विज्ञान के विकास में प्राचीन भारत का बहुत बड़ा योगदान था।

-प्राचीन विश्व का इतिहास पृ० १०० प्रगति प्रकाशन मास्को।

डॉ० राजबली पाण्डेय – 'कम्बोडिया-कम्बोज (कम्बुज देश) हिन्द-चीन में दूसरा भारतीय राज्य कम्बुज था, जिसको आजकल कम्बोडिया कहते हैं। इस राज्य की उत्पत्ति का इतिहास बहुत धुँधला है। सम्भवतः भारत के पश्चिमोत्तर कम्बोज से आकर वहाँ के लोगों ने इस राज्य की स्थापना की थी। यह घटना ईस्वी संवत् की प्रथम या दूसरी शती की होगी। एक अनुश्रुति के अनुसार कौण्डिन्य ने एक नाग कन्या सोमा से विवाह किया और कम्बुज राज्य की स्थापना की। यह अनुश्रुति आर्य और नाग रक्त के मिश्रण के ऊपर अवलम्बित मालूम पड़ती है। दूसरी अनुश्रुति में कौण्डिन्य को इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) के राजा आदित्य वंश का पुत्र कहा गया है।" प्राचीन भारत पृ०४५०-५१

डॉ० रमेशचन्द्र मजूमदार– 'कम्बुज राज्य के उत्कर्ष के पूर्व प्रायः इसी प्रदेश में एक और भारतीय राज्य था, जिसको चीनी लोग फूनान कहते थे। इसके मूल संस्कृत नाम का ज्ञान अभी नहीं हो सका है। इस राज्य के भीतर कम्बोडिया, कोचीन चीन का एक भाग और मीकांग नदी की निचली घाटी सम्मिलित थे। चीनी अनुश्रुतियों के अनुसार फू-नान के आदिवासी लोग अर्द्धसभ्य थे। वे नंगे रहते थे और शरीर को गोदने से सजाते थे। उनकी रानी लियू-ची ब्राह्मण धर्म के अनुयारी हुएन-तिएन से पराजित हुई, हुएन-तिएन ने उससे विवाह कर लिया और उस प्रदेश पर शासन करने लगा। इसने इन लोगों में सभ्यता का प्रसार किया और औरतों को कपड़ा पहनना सिखाया। हुएन-तिएन शब्द कौण्डिन्य का चीनी रूपान्तर है, जो सीधे भारत से आया था और उसने संभवतः प्रथम शती ईस्वी में अपना राज्य स्थापित किया।' प्राचीन भारत पृ० ४७१-७२

किरात भाषाओं में या अन्यत्र भी 'स', 'क', 'च' परस्पर परिवर्तित होते रहते हैं। कङ् का सङ् फिर हङ् हो गया। किरात देशों में कङ् -नदी-मीकङ्, सङ् -नदी-सङ्पो-ब्रह्मपुत्र। इसी प्रकार कौण्डिन्य-सौण्डिन्य-हौण्डिन्य-हौन्तिन्य-हुएन तिएन (चीनी)।

चन्द्रगुप्त वेदालङ्कार- ईसा की प्रथम शताब्दी में समूचे कोचीन, चीन, कम्बुज, दक्षिण लाओ, स्याम और मलाया प्रायद्वीप में एक हिन्दू राज्य की सत्ता दिखायी देती है। इस राज्य का वास्तविक नाम अभी तक ऐतिहासिकों की खोज का विषय बना हुआ है, लेकिन चीनी लोग इसे फू-नान कहते थे। फूनान की

स्थापना दक्षिण भारत के कौण्डिन्य नामक एक ब्राह्मण ने की थी। इस समय वहाँ नाग पूजकों का राज्य था। कौण्डिन्य ने इन्हें परास्त कर सोमा नामक नाग कन्या से विवाह कर, एक नवीन वंश को जन्म दिया। सोमा के नाम से उस वंश का नाम सोमवंश पड़ा।

कुलासीद् भुजगेन्द्रकन्यासोमेतिसावंशकरीपृथिव्याम्

कौण्डिन्य नाम्ना द्विजपुङ्गवेन कार्य्यर्थपत्नीत्वमना यियापि

Steal Inscription of Prakash Dharma

—वृहत्तर भारत

बिजेनराय चटर्जी- कम्बुज निवासियों में भगवान् शिव की पूजा बहुत प्रचलित थी। शिव की नटराज रूप में पूजा उन्हें बहुत भाती थी। कम्बुज में नटराज की मूर्तियाँ बहुत बड़ी संख्या में मिली हैं कम्बुज की भूमि पर सर्वप्रथम पदार्पण करने वाला एक भारतीय ब्राह्मण कौण्डिन्य था। इसके सभी साथी शैव धर्म को मानने वाले थे। राजा लोग महाहोम, लक्षहोम, कोटिहोम आदि वैदिक यज्ञ करते थे।

Indian Cultural Influence in Combodia पृ० 237

कौण्डिन्य नाम की चर्चा प्राचीन काल से ही भारतीय वाङ्मय में रही है। शतपथ ब्राह्मण (१४-१५-२०) में ऋषि कौण्डिन्य का उल्लेख है। बृहदारण्यकोपनिषद् (११-५-२०) में इसे शाण्डिल्य का शिष्य कहा गया है। कौण्डिन्य गोत्र भी प्राप्त होता है। इस विषय में के०ए०एन०शास्त्री की पुस्तक 'Aspects and India's history and culture' में विस्तार से उल्लेख है। भारत के प्राचीन ग्रन्थ उस कौण्डिन्य के विषय में मौन है जिसने ईसवी की प्रथम शताब्दी में कम्बोडिया में भारत से जाकर सोमा से विवाह कर आर्य-सभ्यता की स्थापना की थी। दक्षिण पूर्व एशिया में अन्य द्वीपों में भी कालान्तर में कौण्डिन्य नामका व्यक्ति के शासक होने की चर्चा आती है।

R.Sathianathier- 'Bali and Bornio the early history of bali is unknown but Chinese reeords throw some light on Poli (identified with Bali with some probability) in the Sixth and Seventh centur ies, Kaundinya is mentioned as the name of the dynasty

ruling over it and an embassy was sent to China in 518 A.D.'

History of India Vol. I

Also referred Ancient History of south East Asia-R.C. Majumdar.

इन सन्दर्भों में श्री राय जी का यह कथन उचित है कि "कौण्डिन्य एक ऐतिहासिक व्यक्ति होते हुए भी एक 'प्रतीक' है भारत की विस्तार मुखी आत्मा- कृण्वन्तो विश्वमार्यम् का प्रतीक-नितान्त प्रामाणिक एवं प्रासङ्गिक है। उसे 'स्थूल तथ्य' के रूप में न लेकर सारे कौण्डिन्यों का सार-तत्व समझना चाहिए।"

अश्वत्थामा- चम्पा के शिलालेख में द्रोणपुत्र अश्वत्थामा का उल्लेख आया है-

'अश्वत्थामो द्विज श्रेष्ठाद् द्रोण पुत्रादवाप्यताम् '

Myson Steale Inscription of Prakash Dharma

चीनी एवं कम्पूचियन पुराणों के अनुसार कौण्डिन्य अश्वत्थामा का शिष्य था। कौण्डिन्य का काल प्रथम शती ईसवी माना जाता है अर्थात् आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व। अश्वत्थामा महाभारत कालीन पात्र है। इस समय कृष्ण संवत् ५२०९ चल रहा है। (कल्याण गीता प्रेस)। ५२०९ में से २००० घटाने पर ३२०९ वर्षों का अन्तर (इसे लगभग ही समझना चाहिए) अश्वत्थामा तथा कौण्ड्रिन्य के काल में है। अश्वत्थामा का लगभग तीन हजार वर्षों के पश्चात् कौण्डिन्य से भेंट कितनी वैज्ञानिक, विश्वसनीय एवं प्रमाण पुष्ट है इस पर प्रश्न उठना स्वाभाविक है। इस सन्दर्भ निम्न तथ्य विचारणीय है-

महाभारत के सौप्तिक पर्व के अनुसार श्री कृष्ण ने अश्वत्थामा को शाप दिया था कि "तुम बार बार पाप बटोरते हो और बालकों की हत्या करते हो। तुम तीन हजार वर्ष तक पृथ्वी में भटकते रहोगे और किसी भी जगह किसी पुरुष के साथ तुम्हारी बातचीत नहीं होगी। तुम्हारे शरीर से लोहू-पीब की गंध निकलेगी। इसलिए तुम मनुष्यों के बीच में नहीं रह सकोगे। दुर्गम वनों में ही पड़े रहोगे"- संक्षिप्त महाभारत गीता प्रेस पृ०१०३८

इस प्रकार ५२०९ में से ३००० निकाल देने पर प्रथम शती ईसवी का काल (लगभग) आ जाता है, अतः मैंने इन दोनों का मिलन प्रस्तुत ग्रन्थ में वर्णित किया है। यद्यपि यह तथ्य तर्क की कसौटी पर पूर्णतः युक्ति सङ्गत प्रतीत नहीं होता, फिर भी प्रतीक रूप में माना जा सकता है। जैसा कि श्री कुबेर नाथ राय ने कहा है कि यहाँ पर कौण्डिन्य कोई एक स्थूल सत्ता के रूप में नहीं बल्कि इतिहास में घटित होने वाली तमाम कौण्डिन्य सत्ताओं का निचोड़ है। यही बात हम अश्वत्थामा के लिए भी ले सकते हैं। यह मैं कोई नयी बात नहीं कर रहा हूँ। एक ही 'परशुराम' या 'हनुमान्' त्रेता से द्वापर तक चलते हैं। एक ही 'नारद' हर युग में मौजूद हैं। वस्तुतः स्थूल इतिहास दृष्टि 'स्थूल अस्तित्व' को लेकर चलती है, परन्तु काव्य स्थूल इतिहास नहीं। इसमें इतिहास का मधु' प्रस्तुत किया जाता है। ग्येटे (Goethe) ने कहा है कि "Essence of History is mythology and essence of mythology is Poetry" इतिहास का सार पुराकथाएँ (मिथक) हैं और पुराकथाओं का सार काव्य है"। बिलकुल सही बात है। अश्वत्थामा, हनुमान, विभीषण आदि को चिरजीवी माना जाता है। वे अब भी मौजूद हैं। यह 'जन-मानस' में बैठी बात है, वैसे ही जैसे मध्य प्रदेश के लोग मन में यह बैठा है कि आल्हा अब भी जीवित हैं। गोरख-मछिन्दर अब भी हैं। इन बातों का स्थूल इतिहास में कोई महत्त्व नहीं, परन्तु काव्य में चलती रही हैं, और चलती रहेंगी, क्योंकि काव्य स्थूल इतिहास नहीं। कवि उस सारी ऐतिहासिकता के स्थूल क्रियाकलाप के पीछे उद्घाटित 'बोध' या 'अनुभव' को देना ही अपना दायित्व मानता है। अतः अश्वत्थामा और कौण्डिन्य से भेंट कराकर मैंने कोई नयी बात नहीं की है, वही की है जो हमारे पूर्व सूरिगण करते आये हैं।

महासागर- प्राचीन भौगोलिक नामों का आधुनिक युग में भौतिक सत्यापन कर पाना अत्यन्त जटिल है। प्रस्तुत ग्रन्थ में क्षारोदधि एवं क्षीरोदधि की चर्चा आयी है। "क्षारोदधि (लवण सागर) का जल अत्यधिक क्षार युक्त (खारा) है। इसके समीप जम्बूद्वीप है। क्षीरोदधि का जल दुग्ध की भाँति धवल है। इसके निकट क्रौञ्च एवं शक द्वीप हैं। शकद्वीप रूस तथा साइबेरिया है किन्तु विल्फर्ड के अनुसार ब्रिटिश द्वीप तथा गेरिनी के अनुसार स्याम तथा कम्बोडिया है।" द्रष्टव्य-भौगोलिक चिन्तन का त्रिकास एवं विधि तन्त्र-डॉ० विद्या बन्धु त्रिपाठी भूगोल विभाग वी०एस०एस०डी०कालेज कानपुर पृ०३६ प्रकाशक किताब घर आचार्य नगर कानपुर।

कम्बोडिया-कम्बुज ही है। भारतवर्ष जम्बूद्वीप का एक भाग है।

सोमा- उस समय कम्बोडिया में मातृसत्तात्मक अथवा मातृप्रधान संस्कृति थी। इनमें गोत्र माँ पर चलता था। सोमा को चन्द्रगोत्र का माना गया है। मूलतः ये जातियाँ (मालय नाग -Austric-निषाद-ख्मेर-या ख्मेर-या कशेरुमान) आद्या शक्ति के Lunar चाण्डी रूप की उपासिका थीं। आदिम समाज में 'सोमा रानी' को 'सोमा भगवती' का प्रतिनिधि मानना उचित होगा। चित्रा एवं सोमा एक ही कन्या के नाम हैं, जिससे कौण्डिन्य की प्रथम भेंट सागर तट पर होती है और जो भविष्य में उसकी पत्नी बनी।

भारतीयों ने अपने धर्म का विस्तार कभी रक्तपात के मूल्य पर नहीं किया है। कतिपय अन्य धर्मों के प्रचारकों ने जहाँ अपनी बात मनवाने के लिए छल, छद्म एवं हिंसा का सहारा लिया था वहीं भारतीयों ने स्नेह, करुणा, सहानुभूति, सेवा एवं विश्वबन्धुत्व जैसे आदर्शों को सम्मुख रक्खा तथा सैनिक शक्ति के अभाव में भी विदेशों में जाकर वहाँ के निवासियों के सर्वांङ्गीण उन्नयन में अपना जीवन होम दिया। उनका मात्र यही उद्देश्य था कि किस तरह से सभी सुखी, स्वस्थ एवं जग-मङ्गल "सर्वे भवन्तु सुखिनः" -सम्बन्धी विश्व-बन्धुत्व की भावना से ओतप्रोत हो सकें। इसके लिए इन लोगों ने परिवार-मोह एवं स्वदेश को छोड़कर दुर्लध्य पहाड़ों एवं अगाध समुद्रों को भी पार करके लक्ष्य प्राप्त किया था। जो सफल हुए उनका नाम इतिहास में है, परन्तु जो इस सांस्कृतिक-यात्रा के मध्य में तिल-तिलकर महायात्रा के पथिक बन गये, वे इतिहास के अन्धे पृष्ठों में खो गये। यह कथन कितना समीचीन है-

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं ना पुनभर्वम्।

कामये दुःख तप्तानां प्राणिनामर्तिनाशनम्।।

' न राज्य की कामना है, न स्वर्ग की, न मोक्ष की। कामना है तो दुःख सन्तप्त प्राणियों के कष्ट निवारण कीं'।

तभी तो महावंसकार ने उन्हें धन्य कहा है-

"महोदयस्यापिजिनस्स कड्ढनं विहायपत्तं सुखम्पिते।

करिंसु लोकास्सहितं तहिं तहिं भवेस्य को लोकहिते पमादवा"

महावंस पालिरूप-परिच्छेद-१२।

" इन थेरो (यात्रियों) ने अमृत से भी बहुमूल्य अपने आनन्द सुख का परित्याग कर, सुदूरवर्ती देशों में भटककर, सब कष्टों को सहकर, संसार का हित साधन किया था। निः सन्देह वे धन्य हैं।"

सिल्वाँ लेवी- "भारत ने उस समय आध्यात्मिक और सांस्कृतिक साम्राज्य स्थापित किये थे, जब कि सारा संसार बर्बरतापूर्ण कृत्यों में डूबा हुआ था और जब उसे इसकी तनिक भी चिन्ता न थी। यद्यपि आज के साम्राज्य उनसे कहीं अधिक विस्तृत हैं, पर उच्चता की दृष्टि से वे इनसे कहीं बढ़कर थे, क्योंकि वे वर्तमान साम्राज्य की भाँति तोप, तमंचे, वायुयान और विषैली गैसों द्वारा स्थापित न होकर सत्य और श्रद्धा के आधार पर खड़े हुए थे।"

यद्यपि आज दक्षिण-पूर्व-एशिया के देशों में हिन्दू राज्य नहीं है, फिर भी इन देशों में आज भी भारतीय संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट रूप से विद्यमान है। यहाँ के जनमानस से राम-कथा का गहरा नाता है।

चन्द्रगुप्त वेदालङ्कार- 'कम्बोडिया के राजमहल में अब तक भी इन्द्र की तलवार सुरक्षित है। प्रायः इन सभी द्वीपों में प्राप्त अगस्त्य ऋषि की प्रतिमाएँ, भारत में प्रसिद्ध उनके समुद्र पान तथा दक्षिण दिशा में जाकर बसने की समस्या का सुन्दर समाधान कर रहीं है। ' कम्बुज' की 'सिरायु' नदी, 'सुमेरिया' शिखर आज भी मातृदेश सरयू तथा समेरु आदि नदी, नगर और पर्वतों के प्रति प्रवासी हृदयों की स्नेह कातरता का परिचय दे रहे हैं। संसार को सर्वप्रथम पथ प्रदर्शन करने वाले हिन्दू धर्म की ज्योति को जन्म देने का गौरव यदि भारत को प्राप्त है तो उस ज्योति को प्रतिष्ठित करने के लिए संसार भर में सर्वोच्च तथा विशाल बेयन तथा अंगकोरबाट के सुन्दर मन्दिरों को बनाने का श्रेय कम्बुज निवासियों को ही प्राप्त है।" बृहत्तर भारत पृ०१८३-८४

मैं जब विदेशी यात्रियों फाहियान, ह्वेनसांग आदि के यात्रा-कष्टों को पढ़ता हूँ और उस पर सोचता हूँ तब रोमाञ्चित हो जाता हूँ। सचमुच वे लौहपुरुष थे, जिन्होंने अकथनीय विपत्तियों को मात्र स्व सन्तुष्टि के लिए स्वीकार कर लिया। कल्पना करें कि आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व के भारत में विन्ध्याटवी के गहन प्रान्तर से कौण्डिन्य की यात्रा प्रारम्भ होती है। वह पथ-बाधाओं से खेलता हुआ गङ्गा सागर पहुँचता है। उन्मत्त उद्धत समुद्री तरङ्गों पर नाचता, झूमता और मृत्यु से आँख मिचौली करता हुआ (अयान्त्रिक)

नौका के सहारे अन्ततः बिना नौका के कम्बुज देश पहुँच जाता है। वहाँ भी उसे कष्टों का ही साम्राज्य मिला। अन्ततः वह जन-सेवा में जी जान से जुट गया और उसे शान्ति तभी मिली जब उसने वहाँ के निवासियों के दुःखों को अपना दुःख समझा और उनको दूर करने का भागीरथ प्रयत्न किया। आज विश्व बन्धुत्व की भावना कहाँ चली गयी? परमाणु युद्ध की आशङ्का से मानवता के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न उपस्थित हो गया है। मुझे अन्ताराष्ट्रिय सम्बन्धों की पवित्रता के प्रतीक महानायक कौण्डिन्य की याद आ रही है, जिसने अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मानवता का मार्ग प्रशस्त किया था। कौण्डिन्य की कथा उस देश से सम्बन्धित है, जिसे कभी सुवर्ण-भूमि एवं सुवर्ण-द्वीप कहा जाता था, जो अब तीसरे विश्व के देशों में गिने जाते हैं तथा सन्त्रास की विषमताओं से पीड़ित हैं। कौण्डिन्य, भारत की इन देशों के साथ सदियों से चली आ रही मैत्री का प्रतीक है। जिन देशों का विश्व की राजनीति में कोई विशेष महत्व नहीं है, उनको विषय बनाकर यह काव्य लिखा गया है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। वर्तमान काल की अनेक समस्याएँ कौण्डिन्य में प्रतीक रूप में विद्यमान हैं।

काव्य अन्याय एवं अनाचार के विरूद्ध सतत आन्दोलन का दूसरा नाम है। काव्य का लक्ष्य मानवीय कुप्रवृत्तियों की ओर सङ्केत कर उनके समापन हेतु, सकारात्मक व्यक्तिगत एवं सामाजिक वातावरण के निर्माण में योगदान करना है। ये मानवीय दुर्बलताएँ कभी भी तथा कहीं भी हो सकती हैं। आज के वैज्ञानिक एवं अति विकसित युग में मानव पहले से कहीं अधिक सभ्य एवं सुसंस्कृत हो गया है परन्तु आज भी स्वार्थपरता, अनैतिकता अबला-बलात्कार, सामूहिक यौनाचार, नरबलि, पशुबलि, नरमांस भक्षण, भुखमरी, शोषण, उपचार के अभाव में मानव-मृत्यु तथा मानवाधिकारों का हनन जैसी अनेक अमानवीय घटनाएँ पढ़ने एवं सुनने को मिल जाती हैं। ऐसे ही कतिपय प्रकरण कौण्डिन्य में भी आये हैं जिनके समापन का अथक एवं सफल प्रयास महानायक कौण्डिन्य ने किया था, इसी में कौण्डिन्य का महत्त्व सन्निहित है। सम्भव है कतिपय लोग ऐसे प्रकरणों की उपस्थिति पर नाक-भौं सिकोड़ें। इस सन्दर्भ में मुझे आचार्य चतुर सेन के महान उपन्यास 'वयं रक्षामः' में लिखित 'पूर्व निवेदन' के ये शब्द स्मरण आ रहे हैं- "वयं रक्षामः में प्राग्वेद कालीन जातियों के सम्बन्ध में सर्वथा अकल्पित, अतर्कित नई स्थापनाएँ हैं। मुक्त सहवास है,

विवसन विचरण है।..... नरमांस की खुले बाजार में बिक्री है, नृत्य है, मद है, उन्मुख अनावृत यौवन है। यह सब मेरे वे मित्र कैसे बर्दाश्त करेंगे जो सदा ही चौंकायमान रहते हैं।....... सत्य की व्याख्या साहित्य की निष्ठा है।..... जीवन और सौन्दर्य की व्याख्या का नाम साहित्य है।..... सत्य में सौन्दर्य का मेल होने से उसका मंगल रूप बनता है। यह मंगल रूप ही हमारे जीवन का ऐश्वर्य है। (तीसरा संस्करण- १९७१ पृ०५-६-७)।

'प्राचीन भारत का इतिहास' (सम्पादक द्विजेन्द्र नारायण झा, कृष्ण मोहन श्री माली प्रकाशक हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय-दिल्ली विश्वविद्यालय) के पृ०२५३ पर लिखा है कि " पुरातत्त्ववेत्ताओं के लगातार शोधकार्य से ज्ञात होता है कि दक्कन के निचले क्षेत्रों में लौह युग की महापाषाण संस्कृति प्राचीन है, जिसके पल्लवन का काल कम से कम ईसवी पूर्व १०००-८०० के बीच माना जाता है। सुदूर दक्षिण में यह संस्कृति दूसरी तथा तीसरी शती ईसवी तक प्रचलित रही।।" माना जाता है कि ज्ञान-विज्ञान, सभ्यता एवं विकास की प्रथम किरण भारत-धरा पर उतरी थी। जब भारत-भूमि के एक भाग दक्षिण भारत में दूसरी, तीसरी शती ईसवी तक लौहयुगीन महापाषाण-संस्कृति के अस्तित्व का ज्ञान होता है तब प्रथम शती ईसवी में कम्बुज सहित सुवर्ण-भूमि, सुवर्ण-द्वीप की सांस्कृतिक स्थिति क्या रही होगी, सहज कल्पना की जा सकती है।

मेरे अन्तर्मन में सज्जन-मात्र के प्रति सम्मान की भावना है तथा कम्बुज़ सहित सुवर्ण-भूमि एवं सुवर्ण-द्वीप की जनता आदरणीय है। यदि इन क्षेत्रों में कतिपय मानवीय दुर्बलताओं को कौण्डिन्य में प्रस्तुत किया गया है तो वे प्रतीकात्मक हैं और उनसे आधुनिक विश्व की अछूता नहीं है।

साहित्यकार को यथार्थवादी या आदर्शवादी होना चाहिए? समाज के प्रति उसके क्या -क्या उत्तरदायित्व है। इन्हीं प्रश्नों के उत्तर में प्रसाद जी के ये पंक्तिया द्रष्टव्य हैं-"कुछ लोग कहते हैं-साहित्यकार को आदर्शवादी होना चाहिए, और सिद्धान्त से ही आदर्शवादी धार्मिक प्रवचन कर्ता बन जाता है। वह समाज कैसा होना चाहिए, यही आदेश करता है। और यथार्थवादी सिद्धान्त से ही इतिहासकार से अधिक कुछ नहीं ठहरता, क्योंकि यथार्थवाद इतिहास की सम्पति है। वह चित्रित करता है समाज कैसा है या था, किन्तु साहित्यकार न

तो इतिहास कर्ता है और न धर्म-शास्त्र प्रणेता। इन दोनों के कर्तव्य स्वतंत्र हैं। साहित्य इन दोनों की कमी पूरा करता है। साहित्य, समाज की वास्तविक स्थिति क्या है, इसको दिखाते हुए भी उसमें आदर्शवाद का सामंजस्य स्थिर करता है। दुःख दग्ध जगत और आनन्दपूर्ण स्वर्ग का एकीकरण साहित्य है। इसलिए असत्य अघटित घटना पर कल्पना को वाणी महत्वपूर्ण स्थान देती है,' जो निजी सौन्दर्य के कारण सत्य पद पर प्रतिष्ठित होती है। उसमें विश्व मंगल की भावना ओत प्रोत रहती है।"

काव्य और कला तथा निबंध प्रसाद मन्दिर संस्करण १९८३ पृ १२३-२४

'मन पवन की नौका' के पृष्ठ ८५ पर श्री कुबेरनाथ राय लिखते हैं कि "यह कौण्डिन्य भारतीय' ईनियास' था और यदि मैं 'वर्जिल' जैसा कवि होता तो उसकी प्रेमगाथाओं और युद्धगाथाओं पर एक महाकाव्य लिखता"।

इस स्थिति में कौण्डिन्य पर लेखनी चलाना सरल काम नहीं था। मैंने कौण्डिन्य में अनेक स्थलों पर 'मन पवन की नौका' को प्रमाण माना है।

कवि कुल गुरु कालिदास की इन पंक्तियों से मुझे प्रबल सम्बल मिला जिनमें महाकवि ने लिखा है कि" कहाँ सूर्य के समान प्रभावशाली रघुवंश और कहाँ अल्पबुद्धि मैं? मैं तृण की नौका पर बैठकर सागर के पार जाना चाहता हूँ। परन्तु पूर्व के कवियों ने इस विषय पर लिखकर मेरा मार्ग प्रशस्त कर दिया है।" (रघुवंश सर्ग १ श्लोक २-४)। यह संयोग है कि मुझे श्री कुबेरनाथ राय के अतिरिक्त (वह भी अत्यल्प) और कहीं कौण्डिन्य पर कोई विशेष सामग्री नहीं मिली।

मैंने प्रख्यात समस्या नाटककार पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र से कौण्डिन्य की चर्चा की तब पण्डित जी ने कहा था कि" एक ही जगत में चारो पुरुषार्थों की प्राप्ति का उल्लेख काव्य में होना चाहिए। इन वस्तुओं का एक साथ उल्लेख बहुत कठिन होता है। कौण्डिन्य ने अप्रतिम परिश्रम से इन सबको प्राप्त कर लिया था। काव्य का कल्पना से अद्‌भुत सम्बन्ध होता है। ब्रह्म की योगमाया ही कवि की कल्पना है।" गुरुधाम कालोनी वाराणसी २३-०३-१९८४ ईसवी।

कौण्डिन्य के विषय में एक स्पष्ट शोध की नितान्त आवश्यकता है, जो इस महापुरुष के जीवन के विविध पक्षों पर पर्याप्त प्रकाश डाल सके। मैं इतिहास की भूमि पर कल्पना की छाया में महानायक कौण्डिन्य का दर्शन कर रहा हूँ और वह युग पुरुष मुझसे पूछ रहा है कि जिस भारतीय-संस्कृति के प्रकाश ने विदेशों में भी अज्ञान-तिमिर को नष्ट कर मानवता का पथ आलोकित किया था, आज जम्बू (भारत) में उसकी क्या स्थिति है? मैं उस महामानव को क्या उत्तर दूँ।

मैं उन सभी मनीषियों के प्रति हृदय से नत मस्तक हूँ जिनकी कृतियों से मुझे कौण्डिन्य-लेखन में सहायता मिली है।

गङ्गा दशहरा
०९-०६-१९८४ ईसवी

(सुशीलकुमार पाण्डेय)
कादीपुर, सुलतानपुर, उत्तर प्रदेश

□□
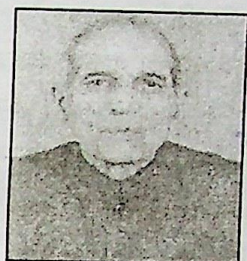
प्रो० सत्यव्रत शास्त्री

(मानद आचार्य विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली, पूर्व आचार्य तथा अध्यक्ष संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, पूर्व कुलपति श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय पुरी (उड़ीसा), साहित्य अकादमी सम्मान प्राप्त, फेलो-इन्टरनेशलन इन्स्टि्यूट आफ इन्डियन स्टडीज- ओटावा, कनाडा पद्मभूषण तथा ज्ञानपीठ सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित)

दक्षिण पूर्व एशिया से जिनका कभी भी कुछ भी सम्पर्क रहा है उन्हें विदित है ही कि भारत का उस भू भाग से कितना गहरा सांस्कृतिक सम्बन्ध है। यह सांस्कृतिक सम्बन्ध कब से प्रारम्भ हुआ होगा इसके विषय में अनेक दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। उन दन्त कथाओं में से एक का सम्बन्ध कम्बुज द्वीप से है। कहा जाता है कि उस कम्बुज द्वीप में जिसे पहले कम्बोडिया कहा जाता था और जिसे अब कम्पूछिया कहा जाता है, कौण्डिन्य नामका एक ब्राह्मण आया, उसने वहाँ की नाग कन्या सोमा से विवाह किया और सूर्यवंश की स्थापना की। वह अश्वत्थामा का शिष्य था जिसका त्रिशूल उसके पास था। जहाँ भी वह त्रिशूल गाड़ देता था वहाँ की भूमि उसकी हो जाती थी। कौण्डिन्य ने जो राजवंश स्थापित किया वह समय पाकर अपने उत्कर्ष के चरम शिखर पर पहुँचा। उसने एक साम्राज्य की प्रतिष्ठापना की। आस-पास के कई देशों पर अधिकार जमाया और उन्हें अपने अधीनस्त किया या अपने प्रभाव क्षेत्र में ले लिया।

यह एक अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि जो व्यक्ति इतना कुछ कर सका उसके विषय में भारतीय वाङ्मय लगभग मौन है। शायद यदि इस प्रकार के चमत्कारी व्यक्तित्व का प्रादुर्भाव किसी अन्य देश में हुआ होता तो उसके बारे में अनेक ग्रन्थ लिख दिये गये होते या उनमें उसके बारे में अत्यन्त भाव प्रवण

उल्लेख होते। पर भारत एक अतिविचित्र देश है। अपने कालजयी सपूतों को भी इसने बहुत बार विस्मृत कर दिया। महाराजाधिराज समुद्र गुप्त ने एक साम्राज्य की स्थापना की। यदि हरिषेण का इलाहाबाद प्रस्तर स्तम्भ अभिलेख न मिला होता तो शायद इस महान विजेता और योद्धा का नाम अज्ञात ही रह जाता। यदि भारत की यह स्थिति है तो भारत से बाहर की तो बात ही क्या? यहाँ के कवियों और लेखकों को तो अपने आश्रयदाता राजाओं और रजवाड़ों की प्रशस्तियाँ बाँचने से ही अवकाश नहीं था कि वे दूर-दराज के देशों के बारे में यह जानने का प्रयास करते कि उनके देश वासियों ने उनमें जाकर क्या क्या चमत्कार किये हैं।

उन चमत्कार करने वालों में से कौण्डिन्य एक था। यदि उसकी जीवनी के बारे में विशेष जानकारी नहीं भी मिलती है तो भी कोई बात नहीं। **उनका नाम स्वयं में ही एक जीवनी है।**

कौण्डिन्य के भारत से आगमन और उसके वहाँ की राजकन्या से विवाह के पश्चात् कम्बुज द्वीप में हिन्दू राजवंश का प्रारम्भ हुआ यह वहाँ के तथा चीनी पुराणों के आख्यानों-उपाख्यानों में वर्णित है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि कौण्डिन्य ही कम्बुज द्वीप में पाँव रखने वाला पहिला ब्राह्मण था। वहाँ के ब्राह्मण जिन्हें बाटू कहा जाता है अपनी सारी पुरानी परम्परा को भूल चुके हैं। थाई देश के राजकुमार दम्रौङ जब एक बार फ्नोम् पेन्ह (कम्बुज देश की राजधानी) में गये तो उन्होंने वहाँ के प्रधानपुरोहित से पूछा कि उनके पूर्वज कहाँ से आये थे। उत्तर मिला-कैलास पर्वत से। (एच.जी.वेल्स कृत 'सियामीज स्टेट सेरेमोनीज पृ०६१) पुराने समय में वहाँ जैसे राजा का अभिषेक किया जाता था उसी तरह ब्राह्मणों का भी। जहाँ राजा को इन्द्र के समकक्ष माना जाता था, वहाँ ब्राह्मण पुरोहित को बृहस्पति के। राज-काज में ब्राह्मणों का पर्याप्त दखल था। स्थिति यहाँ तक थी कि यदि किसी राजा के सन्तान नहीं होती थी तो वह किसी ब्राह्मण बालक को गोद ले लेता था जो उसका उत्तराधिकारी बनता था।

चूँकि कौण्डिन्य का प्रामाणिक जीवन-वृत्त कहीं नहीं मिलता अतः उनके बारे में जो भी, जितना भी लिखा जाएगा, वह सब काल्पनिक ही होगा। प्रस्तुत कृति के लेखक मूलतः कवि हैं। कौण्डिन्य भारत से गया और उसने वहाँ की नाग कन्या को पराजित कर उससे विवाह किया और राज्य का सञ्चालन अपने

हाथ में लिया इस सूत्र को ले उन्होंने एक कथा की सृष्टि कर डाली है। एक कवि के लिए यह स्वाभाविक ही है-

अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते॥

"अपार काव्य संसार में कवि ही प्रजापति है। जिस रूप में संसार उसे भाता है, उस रूप में वह परिवर्तित हो जाता है।"

कवि ने कौण्डिय के विषय में कल्पना की है। कम्बुज की धरा पर जन समूह उसके स्वागतार्थ उमड़ आया। उसमें से एक नवयुवक ने उन्हें अपनी आत्मकथा कहने को कहा। तब कौण्डिन्य ने जो कहा वह इस प्रकार है-

वह एक ऋषिकुल का वासी था। वहाँ स्वाति नाम की एक कन्या के प्रति वह आकृष्ट था। उसका भी उसके प्रति अनुराग था। समय आनन्द से बीत रहा था। एक दिन कुलपति ने उसे अपने पास बुलाया और उसके विचार मग्न होने का कारण पूछने पर जब उसने यह बतलाया कि वह मानव की सेवा करना चाहता है तो उन्होंने कहा कि वह कम्बुज की धरती पर जाकर श्रुति-संस्कृति का प्रसार करे और दलितों व दुःखियों का दुःख दूर करे। उनके इन वचनों से प्रेरणा पा कौण्डिन्य स्वाति से भावभीनी विदा ले अज्ञात कम्बुज देश की ओर चल पड़ा। विन्ध्याचल का अभिवादन कर वह रेवा तट पर पहुँचा, वहाँ से गङ्गा तट तक गया। अगला पड़ाव उसका नालन्दा का था, उससे अगला कामरूप का कानन। वहाँ उसकी अश्वत्थामा से भेंट हुई। जिन्होंने आपबीती उसे सुनायी, जिसमें एकलव्य की कथा समेत बहुत कुछ महाभारत की कथा आ गयी, वह कथा थी जिसके अनुसार श्रीकृष्ण ने उन्हें शिशु-हन्ता होने के कारण शाप दिया था कि तीन सहस्र वर्षों तक वे निर्जन कानन में एकाकी भटकेंगे और उनके शरीर से पीब बहेगी। वहाँ रहने पर वे अक्सर कामाख्या देवी के दर्शनार्थ आते रहते थे। एक अमावस्या की रात देवी ने उन्हें दर्शन दिये और अपना पानपात्र देकर उन्हें कहा कि यदि कोई इसे कम्बुज की धरती पर जाकर प्रतिष्ठित कर दे तो वे (अश्वत्थामा) शाप मुक्त हो जायेंगे। उन्होंने कौण्डिन्य से कम्बुज में जाकर चण्डी देवी का मन्दिर बनवाकर उसमें पानपात्र स्थापित करने को कहा जिसके पश्चात् उनका दुर्गन्ध युक्त व्रण भर जायेगा। कम्बुज धरा के लिए कौण्डिन्य के प्रस्थान करने के समय उन्होंने अपने पितृश्री से प्राप्त वरुण के धनुष को उसे दे दिया और कहा कि अन्त समय आने पर वह उसे

समुद्र में विसर्जित कर दे। विष हरण शक्ति होने के कारण खाने पीने की सब सामग्री पानपात्र में रखने का उन्होंने उसे आदेश दिया और कहा कि वह गङ्गासागर के तट पर पहुँचे जहाँ नाविक छः मासों की अवधि में उसे कम्बुज द्वीप तक पहुँचा देंगे। सागर पार पहुँचकर वह बाण छोड़े। जहाँ तक बाण जायेगा वह धरा उसकी होगी। अनेक विघ्न बाधाओं को पार करती उसकी नौका कम्बुज धरा पर पहुँची। वहाँ एक कन्या से उसकी भेंट हुई। उसने जिज्ञासा भरी दृष्टि उस पर डाली जैसे कि जानना चाहती हो कि वह कौन है और कहाँ से आया है। इशारों से ही दोनों ने एक दूसरे को अपना-अपना परिचय दिया। उस कन्या को उसने कौशेय वसन पहिनाया। चित्रा नाम की उस कन्या ने उस पर चितवन का बाण चलाया। उसी क्षण उसे अपने गुरु के आदेश का स्मरण हो आया। उसने बाण चलाया जो गिरि के दूर शिखर पर गिरा। अश्वत्थामा के कथनानुसार बाण गिरने तक की भूमि पर उसका अधिकार होना था। उस पर उसने अधिकार किया और साथ ही चित्रा के मन पर भी। धीरे-धीरे उसने भाषा सीखी। कम्बुज द्वीप में नारी सत्तात्मक शासन की परम्परा थी। राजकन्या राजसत्ता अपने हाथ में लेने पर सोमा नाम अपनाती थी और अपने सहचर सोमपुरुष का स्वयं चयन करती थी जो उसका भार ढोता था और दैहिक सुख उसे प्रदान करता रहता था। उन दिनों कम्बुज की नर-नारियों पर रति-सुख का प्रतिबन्ध न था। चित्रा ने कौण्डिन्य से पूछा कि क्या वह उसका साथ निभायेगा। यदि वह उसकी पत्नी बनना स्वीकार करती है तो अवश्य'-उत्तर था कौण्डिन्य का। कम्बुज की परिपाटी को बदलना होगा। उसे आर्य संस्कृति को अपनाना होगा। चि्रत्रा को यह स्वीकार था। कौण्डिन्य और चित्रा दोनों समुद्र तट पर पावन परिणय बन्धन में बँध गये-जहाँ विवाह मन्त्रों का उच्चारण स्वयं कौण्डिन्य ने किया। जब कम्बुज द्वीप की रानी सोमा को इसका पता चला तो कम्बुज की परम्परा के विपरीत आचरण करने पर उसने कौण्डिन्य की हत्या करने का निश्चय किया और सोम पुरुष का उसके साथ द्वन्द्व हुआ जिसमें वह मारा गया। इसी के साथ सोमा का भी संहार हुआ। चित्रा कम्बुज की रानी बनी और वहाँ की प्रथा के अनुसार सोमा कहलायी। वहाँ की जनता ने तब उन दोनों की अगवानी की। सोमा ने सोम पुरुष के पद पर कौण्डिन्य को प्रतिष्ठित किया और घोषणा की कि अब से सोमपुरुष ही राजा होगा, नारी उसकी सहगागिनी होगी। अब से नया संविधान लागू होगा। इसके अनुसार कम्बुज में स्वच्छन्दाचारिता वर्जित होगी।

कौण्ड़िन्य का राज्याभिषेक हुआ। उसने मन्त्रिमण्डल का गठन किया और अश्वत्थामा ने जो उसे कहा था उसका स्मरण करते हुए चण्डी देवी का मन्दिर बनवाया जिसमें उसने पानपात्र की स्थापना की एवं भगवती से प्रार्थना की कि कम्बुज द्वीप में आर्य-संस्कृति के प्रचार प्रसार के उद्देश्य में उसे सफलता मिले। जनजीवन में मंदिरा पान और आमिष भोजन की प्रधानता में परिवर्तन लाने हेतु सोमा और कौण्डिन्य ने कम्बुज देश में भ्रमण प्रारम्भ किया। वे कम्बुज से आगे भी गये- मीनाम् क्षेत्र में। वहाँ के पीड़ित और त्रस्त लोगों को सुख पहुंचाने वे बढ़े जा रहे थे। मानव-मांस सेवन का कौण्डिन्य ने विरोध किया। इस दिशा में सोमा को भी उसने समझाया और बर्बरता को रोकने के लिए उसने उसे प्रेरित किया। वनौषधियों के चिकित्सा-विधि के उपयोग को कौण्डिन्य ने बतलाया। पाठशालाएँ खोलीं। अपने अथक परिश्रम और लगन से उसने कम्बुज को सभ्य देश बना दिया।

इस काल्पनिक कथानक को कवि ने अपनी कविता के माध्यम से इतनी सशक्त प्रस्तुति की है कि पाठक कुछ क्षणों के लिए उसमें डूब जाता है। उसे लगता है कि मानों सब कुछ उसकी आँखों के सामने घट रहा है। न केवल एक उच्चादर्श ही कवि ने अपने सामने रखा है, अपितु एक उच्च काव्य की भी उसने रंगोली रची है। कम्बुज द्वीप पर पहुंचने के लिए विभिन्न स्थानों से होते हुए जाने की अनिवार्यता ने कवि को उन स्थानो-रेवातट, गङ्गा तट, कामरूप की सघन वनराजि आदि के वर्णन के निमित्त अपनी काव्य प्रतिभा के प्रस्फुटन का पर्याप्त अवसर दिया। इसी प्रकार का अवसर दिया कौण्डिन्य की समुद्रयात्रा ने, कम्बुज द्वीप पर पहुंचने पर कम्बुज द्वीप ने, वहाँ के निवासियों की आदिम जीवन-पद्धति ने और वहाँ से भी आगे के भू-भाग ने जहाँ प्राकृतिक सुषमा बिखरी पड़ी थी। कौण्डिन्य एक सुन्दर काव्य है, जिसका कथानक भी सुन्दर है, प्रस्तुति भी सुन्दर है। मैं इस सुन्दर काव्य के प्रणेता डॉ० सुशील कुमार पाण्डेय को इस सुन्दर कृति के प्रणयन हेतु हार्दिक बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि उनकी सशक्त लेखनी भविष्य में इस तरह की अनेक सुन्दर कृतियों की रचना कर माँ भारती के भण्डार को समृद्ध करेगी।

सी-२४८

डिफेन्स कालोनी

नई दिल्ली

२९-०३-२००३

सत्यव्रत शास्त्री

(प्रो० सत्यव्रत शास्त्री)
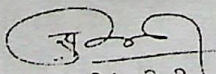
प्रो० सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव दूरभाष-६४१००२, ६४२८२७

पूर्व कुलपति

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

मैंने डा० सुशील कुमार पाण्डेय की अभिनव रचना "कौण्डिन्य" पढ़ी और भरपूर आनन्दास्वादन किया। रचना धर्मिता के अनूठे आयामों की ओर उठते हुए ये साहसी कदम सचमुच सराहनीय हैं। 'कौण्डिन्य' का इतिवृत्त पुरातन होने पर भी अक्षुण्ण और इसीलिये नित-नूतन भी है। यह कृति जहाँ एक ओर इतिहास-पुराण-परम्परा तथा लोकोत्तरानन्ददायिनी काव्य-कला का मञ्जुल सामञ्जस्य प्रस्तुत करती है, वहीं भारतीय-संस्कृति की स्वर्णिम समृद्धि की यशोगाथा के रूप में भी अपनी अमिट छाप छोड़ती है। इस रचना में कहीं अभिनव-कवि-कल्पनाएँ हिलोरें लेती हैं और कहीं रस की फुहारें पाठक को बरबस बेसुध करती हैं। भाषा-शैली, वृत्त-चयन एवं प्रसादगुणगुम्फित शब्द विन्यास-सभी दृष्टियों से कवि की बाँकी प्रतिभा निरन्तर छलकती-झलकती प्रतीत होती है। कविप्रतिभा के इस उन्मेष से आनन्द की स्त्रोतस्विनी निरन्तर प्रवाहित होती रहती है।

21.2.2001.

(प्रो० सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव)

त्रिवेणीकवि अभिराज प्रो० राजेन्द्र मिश्र

(पूर्व रीडर संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, पूर्व अभ्यागत आचार्य-उदयन विश्वविद्यालय डेनपसरबाली दक्षिण पूर्व एशिया (सुवर्ण द्वीप), पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष हिमाचलपद्रेश विश्वविद्यालय शिमला, वाचस्पति सम्मान प्राप्त, राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त, पूर्व कुलपति सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी।)

वृहत्तर भारत की सीमाओं का ज्ञान हमें रघु दिग्विजय (कालिदास), समुद्रगुप्त प्रशस्ति (हरिषेण) तथा अन्यान्य ऐतिहासिक साक्ष्यों से होता है। पाण्ड्यनरेश भारवर्मन् कुलशेखर (१२६८-१३१० ई०) ने सिंहल नरेश पराक्रम बाहु को परास्त किया था तथा उनसे भगवान् तथागत के दन्तावशेष छीन लिये। साहस, अभियान और शौर्य अलक्षेन्द्र, तैमूर या नेपोलियन में ही नहीं थे। प्राचीन भारतीय नरेश निश्चय ही उनसे भी श्रेष्ठ थे विजिगीषुता में। परन्तु भारतीय जन-जीवन की एक पुष्ट दार्शनिक भावभूमि होने के कारण, उन नरेशों की जयेच्छा कभी भी अन्याय, अनाचार एवं रक्तपात में नहीं पर्यवसित हो सकी। प्रायः भारतीय चक्रवर्तियों ने स्नेह, प्रेम एवं अपने वैयक्तिक गुणों से ही अन्यान्य राजाओं की वशीभूत किया। सैन्यमद से विशृंखलित होने का शायद ही कोई निदर्शन प्राप्त हो।

जिस देश का नन्हा शिशु नचिकेता भी भगवान् यम को अपने संयम एवं निरीहता से विस्मयविमुग्ध कर दे यह कर कि-तवैव वाहास्तव नृत्यगीते। और बार-बार आत्मरहस्य बताने का निर्बन्ध करे, ध्रुव और प्रहलाद जैसे स्तनन्धय जहाँ अपनी ईश्वर निष्ठा से ऋषियों-मुनियों को भी पीछे छोड़ दे वह देश भला श्वोभावी सांसारिक विभुता में खो सकेगा? भारत में मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा

पहले है और भौतिक सुखो की बाद में। यही कारण है कि इस देश में विक्रम, पुष्यमित्र, हर्ष, भोज, तथा यशोधर्मा-सरीखे विद्याविलासी महापण्डित नरेश अधिक हुए-आजीवन मार-काट करने तथा राज्य-सीमा बढ़ाने वाले नरेश प्रायः नहीं ही हुए।

महाप्राज्ञ मैक्समूलर ने यूनानियों की तुलना में भारतीयों को उत्कृष्ट बताते हुए बड़ी स्पष्टता से कहा था-

Greeks are happy where they are, for them this life is a reality. But for Indians this life was merely a drama, a delusion, that is why India has no history.

सचमुच भारतीयों ने इतिहास नहीं लिखा। क्षण भंगुर जीवन का क्या इतिहास? भारतीय परलोकोन्मुख जीवन जीते थे। परन्तु उन्होंने इतिहास का निर्माण किया। वे भारतीय दर्शन का अमरत्व-सन्देश लेकर, वेदमंत्रों का जिजीविषा-भरा रिक्थ लेकर, महावीर और तथागत की शान्तिकामना लेकर यामुन, गाङ्ग प्रदेश से बाहर भी गये और देखते ही देखते सुवर्ण-भूमि, चम्पा, कम्बुज, यवद्वीप, लावदेश तथा ताम्रलिप्ति में भारतीय राजवंशों की यशोध्वजाएँ फहराने लगीं।

परन्तु ये अभियान अनुकूल वातावरण में हुए थे। अशान्त मानवता स्वयं प्राणप्राथेय खोज रही थी। 'रामायण एवं महाभारत' जैसे आर्षचरितों ने, वाल्मीकि एवं व्यास-जैसे क्रान्तिदर्शी कवियों ने वह प्राण-पाथेय जीवन्त रूप में अर्पित किया। फलतः, दो संस्कृतियों का समन्वय हुआ और एक तीसरी नवीन संस्कृति-शाखा फूट पड़ी। लाओस के राजमहलों की दीवारें रामकथा के चित्रों से अंकित हो उठीं। कुछ ही वर्षों में वहाँ भी अयुध्या (अयोध्या), खिटकिन (किष्किन्धा), लंग्का (लंका) बस गई और फा-लाक, फा-लाम (प्रिय लक्ष्मण,प्रिय राम) जन-जन के उपास्य देवता बन गये हुआन-सुआन (रावण) से लोगों को द्वेष हो गया तथा हनीमोन (हनुमान्) के प्रति अनुरक्ति।

ऐसे ही एक उषोदय में एक और भारतीय इतिहास पुरुष कौण्डिन्य कम्पूचिया की उर्वराभूमि में पहुंचा और वहाँ की राज्याधिष्ठात्री स्वामिनी से विवाह रचाकर एक नये राजवंश का प्रवर्तक बन गया। संस्कृत एवं हिन्दी के वाक् सिद्ध रचनाकार डॉ० सुशील कुमार पाण्डेय ने उसी महानायक को अमरत्व

देने के ध्येय से १८ सर्गों का एक सर्वथा अस्पृष्ट, अननुभूत, एवं असंस्तुत काव्य लिखा है। मैंने बड़े मनोयोग एवं अभिरुचि से इस कृति का पारायण किया हे, और आन्तरिक मुदिता एवं परितोष का अनुभव किया है।

रचनाकार काव्य शिल्प में निश्चय ही 'प्रसाद' एवं उनकी 'कामायनी' से प्रभावित है। परन्तु भाषा एवं भावाभिव्यक्ति में वह सर्वथा स्वतंत्र एवं मौलिक है। कथानक की अप्रख्यातता ने कविता में एक विचित्र रणरणक भर दिया है, अवगुण्ठन की रहस्यमयता सम्पूर्ण काव्य में प्रभावी है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि 'कौण्डिन्य' काव्य हिन्दी की प्रातिभ रचना-धर्मिता में एक नया अध्याय जोड़ेगा। इस रस सिद्ध, महनीय कृति के यशस्वी रचनाकार श्री सुशील कुमार पाण्डेय जी को हार्दिक शुभकामनाएँ देता हूँ।

२४-११-१९८४

८ बाघम्बरी मार्ग

इलाहाबाद

(राजेन्द्र मिश्र)

प्रो० आनन्दप्रकाश दीक्षित
सुप्रतिष्ठ आचार्य तथा पूर्वाचार्य
एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग
पूना विश्वविद्यालय
गणेश खिण्ड, पुणे (महाराष्ट्र)
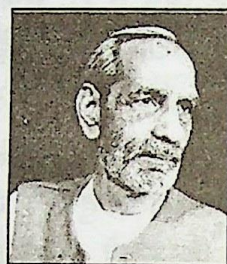
अभिमत

कविवर डॉ० सुशील कुमार पाण्डेय रचित "कौण्डिन्य" प्रबंध-काव्य उनकी ही नहीं, हिंदी साहित्य की एक अभिनव कृति है। अठारह सर्गों में परिसमाप्त, महाकाव्य की भूमि पर निर्मित उनकी रस सुष्ठु रचना के मूल में सहस्त्रों वर्ष पूर्व घटित काव्य-नायक वीरवर कौण्डिन्य के उस भारतीय सांस्कृतिक अभियान की विजय गाथा अंकित है जिसके क्षीण-से तंतु भारतीय प्राचीन साहित्य से लेकर चीनी-कम्पूचियाई पुराणों तक फैले हुए हैं, किंतु कालक्षेप से लगभग विस्मृत हो गये हैं। डॉ० पाण्डेय ने हिंदी के ख्यातनाम निबंधकार श्री कुबेर नाथ राय के निर्देशों से प्रेरित होकर परिश्रम पूर्वक देश-विदेश के साहित्य तथा इतिहास में विकीर्ण तथ्यों को सूत्र बद्ध करके कथात्मक काव्य-प्रबंध का निबंधन किया है। प्रबंध के प्रारंभ में प्राक्कथन-स्वरूप लिखित गद्य-भाग में लेखक ने विभिन्न स्रोतों का जो विवरण दिया है वह घटना की महनीयता का संकेत तो देता है, कथा-विन्यास के लिए उपयोगी भरपूर उपादान नहीं जुटा पातां। लुप्त इतिहास की कड़ियाँ मिलाने का काम कवि की कल्पना को करना पड़ा है। स्वाभाविक है कि ऐतिहासिक घटना-क्रम के रिक्त स्थानों की पूर्ति कवि को प्रणयादि की भावात्मक योजना तथा पर्यावरण और प्रकृति के दृश्यात्मक सौंदर्य-विधान के द्वारा करनी पड़ी है। प्राप्त कथा-संकेतों की अत्यल्पता के बावजूद कथा-प्रवाह की सुसूत्रता की रक्षा करते हुए उसे अठारह सर्गों तक निर्बाध और रोचक बनाये रखना कुशल कवि-कर्म का परिचायक है।

ऐतिहासिक काव्य की निर्मिति में घटना, पात्र, चरित्र, स्थान एवं तिथि की यथातथता का बड़ा मूल्य होता है। इन सबकी तथ्यपरकता की अक्षुण्णता

का निर्वाह करते हुए रचनाकार इनके सूक्ष्म ब्यौरों, पात्रों के चरित्र के समंजस मनोवैज्ञानिक विकास और अन्तर्द्वन्द्व के प्रकाश के साथ-साथ पात्रों के पारस्परिक संवाद तथा प्राकृतिक दृश्यों आदि की योजना के माध्यम से कल्पना-विलास के लिए भी अवसर निकाल लिया करता है, जिससे इतिवृत्त की एकांत शुष्कता या नीरसता को सौंदर्याभिरुचि में परिवर्तित करने में सहायता मिला करती है। 'कौण्डिन्य' के कथा-वृत्त में इतिहास और मिथक के तत्त्व पहले से ही ऐसे घुले-मिले हैं कि कल्पना आपसे- आप अपने लिए अवकाश निकाल लेती है। अश्वत्थामा की उपस्थिति, कौण्डिन्य की सुदीर्घ विजय-यात्रा तथा वस्त्र निक्षेप की घटना के प्रसंग ऐसे ही हैं।

संपूर्ण कथा कंबुज के नागर समूह के बीच कौण्डिन्य के अभिनन्दन के अवसर पर एक नवयुवक की जिज्ञासा के उत्तर में स्वयं कौण्डिन्य के द्वारा ही सुनायी गयी है। अतएव पूरा काव्य उत्तम पुरुष वाली आत्मकथात्मक संरचना का रूप ग्रहण कर लेता है। कवि स्वयं, आदि और अंत की कुछ पंक्तियों को छोड़कर, पूर्णतया नेपथ्य में चला जाता है। पात्रों की सक्रियता जीवंत स्थिति से हटकर फाइल फोटो की स्थिरता में बदल जाती हैं उनका निजी व्यक्तित्व नायकीय वर्णन की सीमाओं से परिबद्ध हो जाता है, स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में खुल-खेल नहीं पाता। संभाषण और तज्जनित विचार, भावोद्वेग, वाक्कौशल, प्रत्युत्पन्नमतित्व और उत्तेजक नाटकीय मोड़ों के लिए उतना अवकाश नहीं रह जाता।

कौण्डिन्य आत्मकथा का आरंभ सीधे वैदिक गुरुकुल के अपने अध्ययन-काल से करते हैं। उनका पूर्व-परिचय काव्य में वर्णित नहीं है। गुरुकुल में उनकी सहाध्यायिनी स्वाती उनकी प्रणय-पात्री है, जिससे विदा लेकर एक दिन मानवता का सेवा-व्रत तथा वैदिक-संस्कृति के प्रसार-प्रसार की कामना-वश वे यात्रा पर अकेले निकल पड़ते हैं। बीहड़ यात्रा में भिन्न प्रदेशों, नदियों को पार करते हुए वे, कामरूप में अश्वत्थामा से मिले, उनके वारुणेय तूणीर-धनुष तथा कामाख्या देवी से प्राप्त पान-पात्र को लेकर, अग्रसर होते रहते हैं। मार्ग में वर्षा, आँधी और घनांधकार के बीच उनकी नौका डूब जाती है, सहयात्री मारे जाते हैं और विशाल अंबुधि में निराधार बहते-बहते स्वयं उनकी चेतना भी लुप्त हो जाती है। प्रातः कालीन शीतल पवन के स्पर्श से जब उनकी आँखें

खुलती हैं। तो उन्हें लगता है कि चण्डी देवी की कृपा से वे अपने अभिलषित स्थान पर पहुँच चुके हैं। उसी परिदृश्य में उन्हें कंबुज-रानी की कन्या नागकुमारी चित्रा दिखायी पड़ती है, जिसकी निर्वस्त्र देह पर कौशेय वसन निक्षिप्त करके वे उसे पान-पात्र भी दे देते हैं। वहीं से वे गुरु के आदेश का स्मरण करके बाण छोड़ते हैं, जो दूर गिरि-शिखर पर गिरता है। वे चित्रा के साथ कंबुज पर अधिकार-कामना लेकर उस प्रदेश में विचरण करते, वहाँ का भाषा-ज्ञान प्राप्त करते, चित्रा से विवाह-बंधन में बँधते, द्वन्द्व-युद्ध में सोम पुरुष को मार कर सोमा रानी का भी संहार करते हैं। उस राज्य पर अधिकार करके वे वहाँ के संविधान को मातृसत्ताक प्रणाली से पितृसत्ताक प्रणाली में बदलते हैं, स्वच्छंदाचार को स्थायी वैवाहिक संस्था-व्यवस्था का रूप देते हैं, लक्ष्यानुरूप चण्डी-मंदिर का निर्माण कराते हैं और शासन व्यवस्था का भार मंत्रि-परिषद् को सौंप कर एक बार फिर आर्य-संस्कृति के विस्तार के लिए सोमा के साथ भ्रमण पर निकल जाते हैं। मीकांग, मीनाम तथा इरावती प्रदेशों में उन्होंने मदिरा-पान, स्वच्छंद-विहार, बलात्कार, नर-मांस भक्षण आदि के बीभत्स दृश्यों को तो देखा ही, प्राणापहारी शबर-आक्रमण को भी उन्हें झेलना पड़ा। पररक्षा तथा आत्मरक्षा करते हुए उन्होंने वनौषधियों के प्रयोग से प्राकृतिक चिकित्सा की विधि से भी उन प्रदेशों के निवासियों को परिचित कराया। इरावदी से पुनः कंबुज लौटकर उन्होंने वस्त्रोत्पादन की विधि तथा कला-ज्ञान का प्रचार करने के अतिरिक्त औषधालयों तथा पाठशालाओं की स्थापना की, शिवमंदिर बनवाया, देवमूर्तियाँ स्थापित कराईं, मूर्तिकला का विकास किया, नाट्यादि शास्त्र तथा शिल्प-कला का प्रचलन किया। और अंततः वैदिक याज्ञिक संस्कृति की स्थापना का उनका स्वप्न नरबलि एवं पशुबलि के त्याग तथा सोमयाग की संपन्नता के साथ पूरा हुआ। श्रुति-ज्ञान के साथ अध्यात्म-ज्ञान का विकास हुआ "सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः" की जन-मंगल-भावना, समरसता तथा "तमसो मा ज्योतिर्गमय" के अनुरूप ज्ञानालोक फैलाने में कौण्डिन्य, सोमा सहित, सफल हुए।

कौण्डिन्य के मुख से कही गयी भारतीय वैदिक संस्कृति की दूर देश में संभूत विजय की यह गाथा भारत की गौरव-गाथा का ही अंश है। विशेषता यह है कि यह शस्त्र-बल से की गयी हिंसक और सार्वजनिक नरमेध करने वाले

विदेशी आक्रामकों की विजय-गाथा नहीं है, अप संस्कृति का स्तवनगान नहीं है। यह एकाकी व्यक्ति के पुरुषार्थ, सत्य, आत्मबल, संकल्प तथा आदर्श आचरण की श्रेय-प्रेयमय गाथा है। कथित-अकथित रूप से यह भगवान् श्रीराम, भगवान् बुद्ध तथा महात्मा गांधी के आदर्शों की स्मृति कथा भी है और संरचना की दृष्टि से अपने वस्तु तथा शिल्प-विधान में ''कामायनी' से अनुगृहीत भी है।

उक्त आधिकारिक कथा का अधिकांश विवरण कवि-कल्पना-प्रसूत है। अश्वत्थामा की कथा तथा परशुराम एवं अगस्त्य के कथा-संकेत प्रासंगिक हैं। अश्वत्थामा के बहाने द्रोण, द्रुपद, एकलव्य, महाभारत युद्ध, परीक्षित -जन्म आदि से सम्बंधित कथा प्रसंगों का नियोजन भी हो गया है, जिससे यह कथा पताका-कथा का रूप ग्रहण कर लेती है। इसका समायोजन इतिहास की दृष्टि से काल के स्तर पर कितना संगत है, कवि ने इसका विचार गद्य-भाग में कर लिया है।
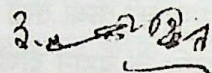
कथा में मुख्य नारी-पात्र दो हैं। स्वाती और चित्रा। चित्रा ही रानी बनने पर सोमा कहलाती है। वह पूर्व की सोमा रानी से भिन्न है। स्वाती प्रणयिनी है और चित्रा विवाहिता। स्वाती प्रेरणा है, चित्रा सहचरी तथा अनुगामिनी। स्वाती कथा के पूर्व भाग में साक्षात् उपस्थित है, चित्रा उत्तर भाग में। परन्तु स्वाती कौण्डिन्य का 'फर्स्ट लव' है और कौण्डिन्य के मनोदेश में उसका स्मृतिकक्ष सुरक्षित है। कौण्डिन्य में उसके नाम-स्मरण के रूप में उसके प्रति कृतज्ञता-भाव है जो प्रीति विरहित नहीं है। फिर भी वह प्रेम की दबी हुई चिनगारी कभी विरह-अंगारक नहीं बनती। दोनों नारियों को लेकर काव्य में काम और रूप-सौंदर्य के सूचक कई शृंगारपरक स्थल हैं, यह आत्म-स्वीकृति भी है कि स्वाती को लेकर कौण्डिन्य के 'ललचाये हृदय में' 'अभिसारेच्छा थी पलती' या कि यह कि चित्रा का रूप सम्मोहक था। पर यह नयन-रंजन या अभिसारेच्छा कभी संभोग में परिणत नहीं हुई है। वासनागत चित्रों की पूर्ति कवि ने दूसरे पात्रों के माध्यम से असभ्याचरण के रूप में की है। शृंगार की अनुभूति जगाते हुए भी कवि ने अप्रत्यक्षतः उस पर संयम का आवरण डाल दिया है। इसी संयम के परिणाम स्वरूप स्वाती की मानसिक उपस्थिति के बावजूद काव्य में यह द्वन्द्व नहीं उभरता कि दोनों में से काव्य की नायिका कौन है? यह अधिकार केवल

चित्रा को प्राप्त हैं स्वाती राधा है तो चित्रा रुक्मिणी । कर्तव्य पथ पर बढ़ते नायक की एकरेखिक कथा में न विरह को स्थान है, न पलायन को।

इन क़तिपय 'संकेतों' के साथ हम यहीं विराम करते हैं। यह सुधी समीक्षकों का दायित्व है कि वे विभिन्न दृष्टियों से इस महत् काव्य को निरखें-परखें तथा इसका सही मूल्यांकन करके कवि-कर्म का समादर करें। हमारी शुभकामनाएँ और आशीर्वाद कवि के साथ है।

वसन्तपञ्चमी, माघ शुक्ल ५ वि.सं. २०५९

तदनुसार ६ फरवरी २००३ ई०

'कलापी' १६२/५ब-१स

डी०पी०रोड औंध

पुणे (४११००७) महाराष्ट्र

(डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित)

□□

डॉ० अमर सिंह वधान

डी०लिट्० साहित्य महोपाध्याय विद्यासागर,

पी०जी०डी०सी०टी०, सी०सी०जी

पूर्व वरिष्ठ प्रबंधक सिंडिकेट बैंक

चेन्नई, तमिलनाडु

निदेशक, उच्चतर शिक्षा एवं शोध केन्द्र, ३१५०, सेक्टर २४ डी चंडीगढ़ १६०००३

पुरोवाक्

महान सम्राटों, पराक्रमी राजाओं, वीर सेनापतियों, महायोद्धाओं, परम विभूतियों, मनीषियों एवं मानव प्रेमियों से पटे हुए विश्व इतिहास में हाशिए पर जगह दिए जाने पर भी उन नायकों पुरा कथा महानायकों और लोकहितैषियों का महत्व कम नहीं हो जाता, जिन्होंने अपने त्याग, अदम्य साहस, संघर्ष चेतना, वैचारिक चिंतन के बलपर जोखिम पथ पर अग्रसर हुये हुए मानवता के लिए शांति, संस्कृति, सभ्यता व विश्व बन्धुत्व के मरुद्वीप स्थापित किए। इस श्रृंखला में इतिहास के एक सुदूर पन्ने पर कौण्डिन्य का नाम भी उत्कीर्णित है, जिसने अपने स्नेह, करुणा, सहानुभूति, सेवा, वैश्विक भाईचारा जैसे आदर्शों-मूल्यों से तत्कालीन समाज और लोगों का उन्नयन करते हुए एक सांस्कृतिक -साम्राज्य की स्थापना की। इस अर्थ में कौण्डिन्य अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की पवित्रता के प्रतीक का महानायक है, जिसने प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सच्ची मानवता का मार्ग प्रशस्त किया।

गौरतलब है कि प्रतीक पुरुषों एवं पुराकथा महानायकों पर लिखना इतना आसान कार्य नहीं हैं यह तब और भी कठिन होता है जब विषय तत्संबंधी जानकारी, संदर्भ सामग्री, रचनाकार का साहस एवं आत्मविश्वास का सुसमन्वय न हो। प्रतिभा, भाषा-अभिव्यंजना, संप्रेषणीयता, कलात्मकता, संगीतात्मकता आदि चीजों का अपना अलग महत्व है। होमर, मिल्टन, जयशंकर प्रसाद, मैथिलाशरण गुप्त आदि रचनाकार अपने महाकाव्यों के सृजन में जिस चिंतन-मनन, संशोधन-परिवर्द्धन, प्रतिभा प्रदर्शन एवं काव्यात्मक प्रसव पीड़ा की

प्रक्रिया से गुजरे होंगे, इसकी कल्पना इतना सहज कार्य नहीं है। पी०बी०शैली को 'प्रोमैथियस अनबाउंड' लिखते समय अपनी काव्य प्रतिभा की अंतिम बूँद तक निचोड़ देनी पड़ी थी। जॉन कीट्स 'हाइपीरियन' महाकाव्य आधा ही लिख सका था, उसे पूरा करने का साहस नहीं जुटा पाया। 'कौण्डिन्य' को भारतीय कोलम्बस घोषित करने वाले कुबेरनाथ राय भी इस संदर्भित विषय पर महाकाव्य सृजित करने का सुझाव देकर अपने पुनीत कर्तव्य की इति श्री मान लेते हैं, यद्यपि 'मन पवन की नौका' में उन्होंने कौण्डिन्य गाथा पर एक निबंध लिखा है।

प्रख्यात कवि डॉ० सुशील कुमार पाण्डेय की काव्य कृति 'कौण्डिन्य' यदि एक बिना थके रचनाकार की उदात्त प्रतिभा का परिचायक है तो अतृप्त होती तृप्ति का प्रतीक भी है, इसमें कवि अपने कविकर्म के प्रति पूर्णतः सचेत है तो गहरे मानवीय बोध से लैस भी है, परंपरा के भीतर एक नई परंपरा के उन्मेष लिए प्रयासरत है तो मानव जीवन की प्रत्येक धड़कन को महसूसने और प्रतिध्वनित करने के लिए कृतसंकल्प भी है। यह इसलिए कि कवि जीवन और जगत के बदलते संदर्भों के प्रति पूरी तरह सजग है तथा उसमें गहन मानवीय संलग्नता है। समय, परिस्थिति एवं कतिपय सीमाओं के दबाव से सिमटने की बजाय कवि अपनी रचनात्मकता व संवेदनशीलता के ताप से पिघलकर अपने अन्दर एक दरिया का विस्तार महसूसता है। इसीलिए वे महानायक कौण्डिन्य की मानवता के लिए निःस्वार्थ सेवाओं को काव्य-वाणी देने में पूरी तरह कामयाब हुए हैं।

एक अन्य कोण से देखा जाए तो कौण्डिन्य गाथा, इससे जुड़ी घटनाएँ, घटित तमाम बदलाव, जैविक चढ़ाव-उतार, वैचारिक टकराहटें, सांस्कृतिक व सभ्यतापरक-संघर्ष डॉ० पाण्डेय की अनुभूति के स्तर पर उतरे हैं। ठीक वैसे, जैसे इलियाड, पैराडाइज़ लॉस्ट, प्रोमैथियस अनबाउंड, साकेत, कामायनी की विषयगत घटनाएँ क्रमशः होमर, मिल्टन, पी०बी०शैली, मैथिलीशरण गुप्त एवं जयशंकर प्रसाद की अनुभूति के स्तर पर उतरी थीं। 'कौण्डिन्य' काव्य के संदर्भ में अनुभव औरअनुभूति काव्यकार की आश्चर्यमयी आस्तियाँ बन पड़ी हैं। कवि मिथ, पौराणिक संदर्भों और विश्व यथार्थ के साथ दो प्रकार से सदृश होता है- पहला वस्तुनिष्ठ और दूसरा आत्मनिष्ठ। रचनाकार के संवेदन से जब ये तमाम चीजें टकराती हैं तो कई मानसिक बिंब-प्रतिबिंब जन्म लेते हैं, जो कभी

तो भौतिक अस्तित्वों से संबद्ध प्रतीत होते हैं और कभी उनसे पृथक, दिखाई देते हैं। लेकिन डॉ० पाण्डेय इन दोनों दृष्टिकोणों की दूरबीन से वास्तविकताओं को देखते-परखते हैं।

कौण्डिन्यकार का काव्य-सत्य में अटूट विश्वास है। फूनान की नागवंशी साम्राज्ञी ल्यू-ये (सोमा) से कौण्डिन्य का विवाह, कौण्डिन्य द्वारा लोगों को संस्कृति का पाठ पढ़ाना, उन्हें सभ्य बनाना, निकटवर्ती राज्यों के साथ सांस्कृतिक एवं राजनीतिक संबंधों को स्थापित करना, ज्ञान-विज्ञान के विकास में बढ़त लेना, सूर्यवंश का उदय, आर्य सभ्यता का श्रीगणेश, भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के पौधे को कंबोडिया की धरती में रोपना आदि ऐसे तथ्य हैं, जिनमें छिपे रहस्य एवं सत्य के रेशमी रेशों को कवि ने बड़ी कलात्मकता तथा कोमलता के साथ चित्रित किया है। वे मिथ की गहराई में दूर तक जाकर कुछ विरल-सा ढूँढ़ लाते हैं जो 'कौण्डिन्य' कृति के महत्व एवं स्तर को बहुगुणित करता है।

'कौण्डिन्य' के रचयिता ने कृति की लंबाई और इसका रूप-विभाजन विषय-वस्तु के अनुसार सटीक एवं उपयुक्त रखा है। इसमें १८ सर्ग हैं, जो पूरी रचना में मार्के का संतुलन बनाए रखते हैं। संवाद वर्णन, चित्रण आदि तत्त्वों से अमुक उद्देश्य, कार्य एवं मानसिक दशा एकदम पारदर्शित हो उठी है। शब्द भी ऐसे चित्रों को उभारते हैं, जो हमारी कल्पना को सीधे अपील करते हैं, भीतरी दृष्टि को जगाते हैं और उत्तेजित करते हैं। निस्संदेह, इस कृति में विषय-सामग्री को बड़े ही सुन्दर ढंग से व्यवस्थित और समायोजित किया गया है। इसकी मूल्यवत्ता इस बात में भी है कि यह हमारे अंदर जो कुछ उद्दीपित करना चाहती है, वह सौन्दर्य-भाव द्वारा शासित है, नियंत्रित है। सुखानुभूति और रसानुभूति पाठक को बाँधे रखती है। कवि ने अपने पात्रों को उसी रूप में क्रिया करते हुए प्रस्तुत किया है, जिस यथार्थ जीवन में वे विचरण करते हैं और स्थितियों-परिस्थितियों से घिरे रहते हैं। कह देना होगा कि काव्यकार डॉ० पाण्डेय के पास मानसिक मूल तत्त्वों की बनावट को संचालित करने के लिए व्यापक एवं सही ज्ञान का बेजोड़ आधार है।

एक अन्य उल्लेखनीय बात यह है कि 'कौण्डिन्य' काव्य कृति में तर्क सत्य और कला सत्य का उत्तम समन्वय होने से यह उत्कृष्ट रचना बन पड़ी है। पी०बी०शैली का प्रौमेथियस सूर्य के रथ से अग्नि चुराकर मानव जाति को

प्रदान करता है ताकि दुःख-दर्द कम हो सकें। लेकिन सजा के तौर पर उसे एक पहाड़ी पर कैद करके रस्सी से बाँध दिया जाता है। यह सिलसिला कई वर्षों तक चलता है। प्रौमैथियस के इस करुणमय जीवन को देखकर प्रकृति को उससे प्यार हो जाता है और वह प्रौमैथियस को उस नारकीय जीवन से आज़ाद करा देती है। मिल्टन का शैतान जब ईश्वर को चुनौती देकर उसके विरूद्ध युद्ध छेड़ देता है तो उसे साथियों सहित जलती झील की ज्वालाओं में फेंक दिया जाता है। क्रिस्टोफर मार्लो का डॉक्टर फॉस्टस इतना महत्वाकांक्षी है कि वह दुनिया की हर चीज़ को प्राप्त करने के लिए अपनी आत्मा तक बेच देता है। लेकिन डॉ० पाण्डेय का मिथक महानायक कौण्डिन्य इन सभी महानायकों से इस मायने में श्रेष्ठ है कि वह कहीं भी कोई गलत कार्य नहीं करता है, पथभ्रष्ट नहीं होता है। सोमा से उसकी प्रथम भेंट सागर तट पर होती है। तत्कालीन नागपूजकों को युद्ध में परास्त करके उसी सोमा नामक नागकन्या से विवाह करके एक नए वंश को स्थापित करता है। दक्षिण भारत का यह अजेय ब्राह्मण सांस्कृतिक परिवर्तनों के स्वरों से अपने राज्य के वातावरण को अनुगुंजित-प्रतिगुंजित करता है। कौण्डिन्य भारतीय संस्कृति की सार्वकालिक विकास-यात्रा का प्रखर प्रतीक है। उसके बारे में अन्यान्य अनुश्रुतियों, अटकलों और अंदाजों के बावजूद वह भारत की विशाल आत्मा का द्योतक है, तमाम कौण्डिन्य सत्ताओं का निचोड़ है और मिथक-नायकों का एक बलशाली ऐतिहासिक महानायक।

सवाल उठता है कि भारतीयता, पौराणिकता, इतिहास, पुराकथा एवं सत्य से जुड़े इस 'कौण्डिन्य' को इतनी तेज अनुभूति, मार्के की संवेदनशीलता, गहन भाव व बेजोड़ भाषा तथा कभी न कुम्हलाने वाले संकल्पों के हमारे दावेदार एवं शीर्षस्थ काव्यकार प्रकाश में क्यों नहीं ला पाए और क्यों इस महत्व पूर्ण महानायक को सृजनात्मक दृष्टि से कुँवारा, उपेक्षित एवं तिरस्कृत बनाए रखा गया निस्संदेह, इस संदर्भ में डॉ० सुशील कुमार पाण्डेय इसलिए अग्रगण्य कवि हैं कि उन्होंने इतिहास दृष्टि और भारतीयता को गहरे में समझा है। वे जानते हैं कि काव्य मनुष्य का आदिम सखा है और यह मनुष्य की हर स्थिति में पार्श्व में खड़ा रहा है। पौराणिकता और मनुष्य की शाश्वतताओं की गहरी पकड़ कवि डॉ० पाण्डेय के परिपक्व चिंतन-दर्शन का प्रमाणपत्र है। वे स्वीकारते हैं कि मनुष्य से अधिक उन्नत एवं संस्पर्शी रचनात्मक बाध्यता सृष्टि

में अन्यत्र नहीं है। प्रकृति पदार्थ और चेतना को मिश्रित रूप में इससे अधिक विकसित प्रस्तुत नहीं कर सकती। जैवीयता की पराकाष्ठा है मनुष्य और इसलिए वह श्रेष्ठ है। कौण्डिन्य मनुष्य गुण संपन्न युक्त अपने भागवत स्वरूप को पहचान लेता है और वह पूर्ण पुरुष होने के लिए बाध्य है। आश्चर्य नहीं कि अपनी नवीन लोकदृष्टि एवं आधुनिक सृजनात्मक क्षमता के परिणामस्वरूप ही डॉ० पाण्डेय पौराणिकता की उन एकान्त बावड़ियों की गहराई में उतरे हैं, जो अपने प्रशान्त जलों पर काई के आवरण डाले सदियों से मौन है। कहना न होगा कि डॉ० पाण्डेय अपनी पारदर्शी इतिहास एवं काव्य दृष्टि की वजह से ही असंदिग्ध रूप में सभी प्रकार के मिथक जलों में सन्तरण कर सके हैं।

यक़ीनन 'कौण्डिन्य' काव्य कृति डॉ० पाण्डेय की लोकचेतना, सांस्कृतिक चेतना और लोकोन्मुखी सर्जनात्मकता की विराट परिणति है। इस काव्य में उन्होंने एक सच्चे एवं निष्ठावान कवि बनकर भारतीय सांस्कृतिक जीवन की उत्कर्षमयी सर्वांगीणता को सफलता से उडेल दिया है। युगद्रष्टा काव्यकार ने स्पष्ट कर दिया है कि २१वीं सदी मनुष्य की परीक्षा की शताब्दी है। खंडित एवं क्षत-विक्षत हुए सांस्कृतिक मूल्यों, आस्थाओं और विश्वासों को पुनर्जीवित करने का समय है यह मनुष्य आज एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच गया है जिसके आगे अंधेरा है, अनिश्चिय है, दिग्भ्रम है। जहाँ भले-बुरे की दीवार टूट गई है। जहाँ शब्द कुछ और हैं, अर्थ कुछ और धारणा कुछ और है, कर्म कुछ है, परिणाम दूसरा। इस परिप्रेक्ष्य में 'कौण्डिन्य' कृति पौराणिक तथा समकालीन सत्य को उद्‌घाटित करती हुई वैचारिक रचनात्मक स्तर पर एक मजबूत आधारशिला बनकर उभरती है। इस उत्कृष्ट काव्य रचना में डॉ० पाण्डेय ने कुछ कड़वे सत्य अवश्य कहे हैं जो संभवतः कइयों को ग्राह्य नहीं भी होंगे। लेकिन भारतीय अस्मिता, वैचारिक वैभव, पौराणिक बोधगम्यता, इतिहास दृष्टि में बदलाव आदि संबंधी कवि की मान्यताएँ, अवधारणाएँ और स्थापनाएँ बड़े महत्व की चीजे हैं।

'कौण्डिन्य' कृति कथ्य और शिल्प दोनों की दृष्टियों से महनीय है। इसमें सांस्कृतिक चेतना अपने पूर्ण वैभव के साथ व्यंजित है। इस काव्य रचना का जितना ही अवगाहन करें, उतनी ही तृप्ति अतृप्त होती जाती है। पढ़ते-पढ़ते मन आलोकित होता है। घटनाओं की शृंखला, फिर शृंखला में से शृंखला चलती

है, कड़ी से कड़ी मिलती चली जाती है। विष्य की प्रधानता एवं उदात्तता लोक हृदय से एक प्रभावी संवाद स्थापित करती है। कवि के विचारों और भावों का वेग बड़ी कलात्मकता से काव्य में ढल कर चमत्कृत हो उठा है। दरअसल, यह कवि के चित्त का विस्तार है, प्रसार है। तभी तो वे कौण्डिन्य के वृत्त को उत्प्रेरित एवं स्फूर्त करने वाली भक्ति के रूप में व्याख्यायित कर सके हैं। इस काव्य कृति से डॉ० पाण्डेय के काव्य संसार में गौरवमयी वृद्धि हुई ही है, साथ ही समूचे हिन्दी साहित्य की भी यह कृति संपत्ति बन गई है। इस कालजयी काव्य रचना, के माध्यम से जो भावी शोध कार्य, विमर्श एवं बहस के द्वार डॉ० पाण्डेय ने खोले हैं, वे कभी न बन्द होने वाले महाद्वार हैं।

२१ जुलाई, २००३
चेन्नई (तमिलनाडु)

डॉ० अमरसिंह बधान
डॉ० अमरसिंह बधान

□□

प्रो० कल्याणमल लोढ़ा

(निवृत्त आचार्य एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग कलकत्ता विश्वविद्यालय,
निवृत्त कुलपति जोधपुर विश्वविद्यालय
सुब्रह्मण्यम भारती तथा महात्मा गान्धी
आदि पुरस्कार प्राप्त)

मैंने डॉ० सुशील कुमार पाण्डेय के नूतन काव्य कौण्डिन्य की पाण्डुलिपि ध्यान पूर्वक पढ़ी। कौण्डिन्य भारतीय इतिहास का एक अत्यन्त धूमिल नक्षत्र है, जिसे काल के दीर्घ प्रवाह ने हमारी स्मृति और दृष्टि से अत्यन्त दूर कर दिया है। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्रीकुबेरनाथ राय ने ही डा० पाण्डेय को 'कौण्डिन्य' जैसे ऐतिहासिक और मिथकीय पात्र की ओर अभिप्रेरित किया। पण्डित लक्ष्मीनारायण मिश्र ने उन्हें दिशा संकेत दिया। प्रस्तुत रचना का यही प्रेरणा बिन्दु है।

भारतीय पौराणिक साहित्य में 'कौण्डिन्य' के विभिन्न रूप प्राप्त होते हैं। हिरण्यकेशी शाखा के पितृ तर्पण में एक कौण्डिन्य का उल्लेख मिलता है, जो एक वृत्तिकार था। कौण्डिन्य नामक एक आचार्य भी हुए है, जिन्होंने ह कार का क वर्ग माना है और इसके लिए कई आचार्यो के नामों में इनका भी उल्लेख प्राप्त है। एक अन्य कौण्डिन्य शांडिल्य के शिष्य थे, जिनकी शिष्य परम्परा में कौशिक हुए। कौण्डिन्य ब्रहर्षि भी हुए जो कुंडिन कुलोत्पन्न थे। (महाभारत सभा पर्वः संहिता के पाठ भेद में) यह युधिष्ठिर के अश्वमेध के सदस्य थे। इनका आश्रय स्थावन थेउर में था और इनकी पत्नी आश्रमा थी। दुर्वाङ्कुर महात्म्य के प्रसंग में इनका कथोल्लेख है। एक और कौण्डिन्य ऋषि हुए, जिनका आश्रम हस्तिमती और साश्रमती के संगम पर था। अतिवृष्टि के कारण ये नदी को शाप देकर विष्णुलोक चले गये। इन विभिन्न सन्दर्भो के परिप्रेक्ष्य में डा० पाण्डेय ने कौण्डिन्य के उस कथासार को रचना का आधार बनाया है, जिसे भारतीय कोलम्बस कहा जाता है और और जिन्होंने कम्पूचिया का खोज कर वहाँ की रानी सोमा से विवाह किया और सूर्यवंश की नींव डाली। सुदूर

पूर्वीय देशों में भारतीय संस्कृति के पावन प्रसार के वे भगीरथ सिद्ध हुए। जिस प्रकार अगस्त्य ने उत्तर दक्षिण को एक कर वृहतर भारत की नींव डाली। उसी प्रकार कौण्डिन्य ने हमारी धार्मिक और राष्ट्रीय परम्परा के ध्वज का कम्पूचिया में आरोहण किया। डॉ० पाण्डेय ने अपनी भूमिका में चीन और कम्पूचिया के पुराणों और विभिन्न भारतीय इतिहास कारों के प्रामाणिक संदर्भों व उद्धरणों से कौण्डिन्य की रचना की है, जो अठारह अध्यायों में विभक्त है। जिस प्रकार उनकी रचना प्रतीक्षा पर ऑसू का प्रभाव था उसी प्रकार कौण्डिन्य पर कामायनी का कथ्य और शैली-बनावट और बुनावट सभी दृष्टियों से। कवि ने कौण्डिन्य के जीवन के सभी पक्षों को उजागर करते हुए उसके पुरुषार्थ और शिवत्व की प्रतिष्ठा की है।

उद्गीथ का मंत्रोच्चार से प्रारम्भ इस कृति का उपसंहार ब्रह्म पुरुष के शिव पंथ पर ज्ञान दीपके मंगल आलोक में प्रणव की पावनता से होता है, जिसमें वैदिक काम, समष्टि चेतना, सेवा और आत्म समर्पण ही मुख्य है। कवि ने कौण्डिन्य को कृष्ण से अभिशप्त अश्वत्थामा का शिष्य गिना है, और इससे उसके जीवन की भूमिका और गंभीर व व्यापक हो जाती है। कवि की दृष्टि अपने कथा-नायक के जीवन चित्रण के साथ-साथ वैदिक संस्कृति का निरूपण भी है। जिसके उच्चतम आदर्शों में ही समस्त मानवता का मंगल है डा० पाण्डेय को कवि-हृदय और दार्शनिक का चिन्तन मिला है, वे काव्य को केवल कलागत मूल्य पर ही स्वीकार नहीं करते। जीवन की समग्रता से ही काव्य की श्री अप्रतिहत रहती है और यह जीवन-बोध ही उसे देश और काल से परे लेकर मानव-हृदय की सनातन और परिच्छिन्न चेतना से संवाहित करता है- कौण्डिन्य रचना का यही मूल उद्देश्य है। प्रकृति कवि का अन्तर्चक्षु होती है- उसी के माध्यम से वह उस अज्ञात और देशकालातीत सौन्दर्य का बोध करता है, जिसे विराट की प्रत्यक्ष और साक्षात् अनुभूति कहा जाता है। प्रकृति चित्रण और इस सौन्दर्य बोध से कौण्डिन्य काव्य जीवन का एक सार्थक बिम्ब बन गया है। मिथकीय काव्य रचना लोक सिद्ध होती है। इतिहास के अनजाने अनदेखे पृष्ठों में उसकी विवेक संगति आवृत रहती हैं आधुनिक चिन्तकों ने मिथक को 'सामाजिक सत्य' के रूप में ग्रहण किया है। मिथकीय अध्ययन लोक परम्परा से संपुष्ट होकर सांस्कृतिक इयत्ता ग्रहण करता है-इसी से उसे

'टोटल सोशल फैक्ट' कहा गया है। कौण्डिन्य में इतिहास, लोक परम्परा और मिथक का हृदयग्राही योग है। डॉ० पाण्डेय की काव्य चेतना का यह एक उत्साहवर्द्धक विस्तार और विकास है। यद्यपि उनके शिल्प और छंद विधान में कहीं-कहीं शैथिल्य और सतहीपन आ गया है पर अपनी अर्न्तभूमि और अन्तर्योजना में 'कौण्डिन्य' एक सशक्त रचना है, जिसके द्वारा कवि भारतीय संस्कृति के मूल्यों और आदर्शों के प्रतिफलन में सफल हुआ है।

कलकत्ता,
गुरुनानक पूर्णिमा वि०सं०२०४१। कल्याणमल लोढ़ा

□□

डॉ० त्रिभुवन सिंह

डी०लिट्०, पूर्व प्रोफेसर हिन्दी विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,

पूर्व कुलपति

महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ वाराणसी

डॉ० सुशील कुमार पाण्डेय संस्कृत साहित्य के अच्छे ज्ञाता हैं। भारतीय वाङ्मय के साथ ही साथ भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के गहन अध्ययन में भी उनकी अभिरुचि है जिसके कारण ऐतिहासिक चेतना और सामाजिक बोध की सहज अभिव्यक्ति करने में वे पूर्ण सफल रहे हैं। अपने विस्तृत अध्ययन फलक के कारण ही वे संकीर्ण ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, और यहाँ तक कि भौगोलिक सीमाओं को भी वे तोड़ सके हैं। इस सन्दर्भ में उन्होंने जो दृष्टि निर्मित कर ली है उससे वृहत्तर भारत का स्वर्णिम अतीत उनके मानस लोक में निरन्तर प्रतिबिम्बित होता रहा है और वे ही प्रतिबिम्ब उनकी रचना धर्मिता को समृद्ध एवं प्रासंगिक बनाते हैं, इस कथन की पुष्टि के लिए उनके नवीनतम प्रबन्ध-काव्य 'कौण्डिन्य' को देखा जा सकता है।

इसके पूर्व मुझे डॉ० पाण्डेय की काव्य कृति 'प्रतीक्षा' देखने को मिली थी जिससे मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ था और वह इसलिए भी कि डॉ० पाण्डेय संस्कृत वाङ्मय के माध्यम से अर्जित ज्ञान को राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से सफलतापूर्वक प्रस्तुत कर रहे हैं। साधन विहीन और अध्ययन के वातावरण से दूर सुल्तानपुर जनपद के एक अंचल में डा० पाण्डेय की एकान्त साधना स्पृहणीय है। हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं में भी डा० पाण्डेय ने लेखनी चलायी है, पर महत्वपूर्ण काव्य परम्परा में 'कौण्डिन्य' उनकी दूसरी काव्य कृति है जो महाकवि प्रसाद की 'कामायनी' का स्मरण दिलाती है। इसमें सन्देह नहीं कि दोनों की भावभूमि में महान अन्तर है पर जहाँ तक बिम्बों, प्रतीकों एवं काव्य निहित सन्देश का प्रश्न है निश्चित रूप से 'कामायनी' कौण्डिन्यकार के लिए आदर्श महाकाव्य है। भावों की स्पष्टता की वाहिका डॉ पाण्डेय की भाषा का यत्र-तत्र तेवर कौण्डिन्य काव्य में देखने को मिलता है।

द्वापर की समाप्ति के बाद का ऐतिहासिक परिवेश कौण्डिन्य ऐसे एक नायक के माध्यम से प्रस्तुत प्रबन्ध काव्य में अभिव्यक्त हुआ है जिसकी जानकारी अनेक सुधी जनों को भी न होगी। शोध के इस पुराणेतिहासिक नायक एवं उसकी गाथा को डा० सुशील कुमार पाण्डेय ने 'कौण्डिन्य' के माध्यम से प्रस्तुत किया है, जो अभिनन्दनीय है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह काव्य हिन्दी जगत में लोक प्रिय होगा और डॉ० पाण्डेय के कवि स्वरूप को प्रतिष्ठित करने का कारण बनेगा।

(डॉ० त्रिभुवन सिंह)

□□

डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी

डी०लिट्० (आचार्य तथा अध्यक्ष

हिन्दी विभाग विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन

राष्ट्रीय प्रवक्ता १९८०-८१, शङ्कर, मूर्तिदेवी,

हजारीप्रसाद द्विवेदी, भारत भारती तथा

भवभूति अलंकरण आदि अनेक सम्मान प्राप्त

'कौण्डिन्य' शीर्षक प्रबन्धकाव्य की पाण्डुलिपि अवधानपूर्वक आद्यन्त देख गया हूँ। राय साहब के सुझाव पर कवि ने निष्ठा तथा अध्यवसाय के साथ सम्बद्ध सामग्री की यथाशक्ति खोज की-कुछ सूत्र इधर-उधर बिखरे हुए मिले। रिक्त स्थानों की पूर्ति कवि ने अपनी कल्पना से ठीक की है। हम लोगों की इतिहास दृष्टि से जो परे हो जाता है। वह मिथ बन जाता है....पर उसके भी परे भी समष्टि-अचेतन-मन सक्रिय होता है। उसमें तमाम संभावनाओं को उभारने का अवकाश रहता है। कवि ने भारतीय सांस्कृतिक चेतना से अपने को, अपनी व्यष्टि-चेतना अथवा सर्जक चेतना को एक रूप करके इस काव्य को रचा है और रचने में सफलता भी प्राप्त की है। कवित्व के लिये जिस अनुरूप कल्पना की अपेक्षा होती है- उसकी योजना प्रतिपृष्ठ पर है। इस कल्पना को जिस काव्योचित अनुभूति से खूराक मिलती है-वह भी वहाँ मौजूद है।

कौण्डिन्य हमारी संस्कृति का वाहक है-वृहत्तर भारत में उसकी पताका गाड़ता है- और फहराता है-सोमा के साथ उसकी धारणा है कि-

भारतीय संस्कृति प्रकृति और पुरुष की पारस्परिक पूरकवृत्ति से परिचालित होती है। यहाँ प्रकृति अपने क्रिया कलाप के केन्द्र में पुरुष और पुरुष अपने क्रिया-कलाप के केन्द्र में प्रकृति को रखता है-इसीलिये यहाँ प्रकृति और पुरुष में प्रतिस्पर्द्धा नहीं-पूरकभाव है।-

यजन की संस्कृति ऐसी ही संस्कृति है। यही चेतना मघवा से द्युलोक का और राजा से धरा का दोहन कराकर एक-दूसरे के प्रति समर्पण कराती है।
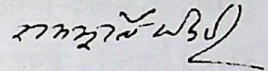
'परस्परं भावयन्तः श्रेयःपरमवाप्स्यथ' आज आवश्यकता है इस सांस्कृतिक स्वर को-अपनी विश्वदृष्टि को पुनः स्थापित करने की। कवि ने अज्ञात किन्तु ज्ञातव्य नायक को इस कार्य के लिये ठीक ही चुना।

१७-०१-१९८५
विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन

राममूर्ति त्रिपाठी
(डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी)

□□

रत्नशंकर 'प्रसाद'
(सम्पादक प्रसाद-ग्रन्थावली)
(सुपुत्र महाकवि जयशङ्कर 'प्रसाद')

प्रसाद मन्दिर
गोबर्धन सराय
चेतगंज वाराणसी।

'कवयः क्रान्तदर्शिनः' (सायण भाष्य ऋग्वेद ७-८६-३) की उक्ति प्रसिद्ध है। यह क्रान्तदर्शिता कालबाधित नहीं कारण कवि चेतना भिन्न आयामों में संचरित रहती है, यही नहीं अपने संचार के अर्थ आयामों की रचना भी किया करती है। राजशेखर ने अपने संदर्भ में स्पष्ट कहा है-

बभूव वल्मीक भवः कविः पुरा ततः प्रपेदेभुवि भर्तृमेण्ठताम् ।
स्थितः पुनर्यो भवभूति रेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः।।

एक विशिष्ट बिन्दु किंवा क्षण की उपलब्धि से कवि क्रान्त दर्शी हो जाता है। बिन्दु से तात्पर्य स्थिति और क्षण से तात्पर्य गति ले सकते हैं, स्थिति में गति और गति में स्थिति के आवर्त कवि चेतना के स्वायत्त रहते हैं: कहा है-

इस गंभीर अनन्त नीलिमा में असंख्य जीवन इतिहास।
यह लो करते ही रहते हैं अपना व्यंग मलिन उपहास।।

—जयशंकर 'प्रसाद'

बुद्ध के ५०० या ६०० जन्मों का ही उल्लेख जातकों में है जबकि कवि चेतना गंभीर अनन्त नीलिमा में झाँककर असंख्य जीवन इतिहास की साक्षिणी हो जाती है। 'चिन्मयी ज्ञान धारा' यथाकाल स्वेच्छया स्व भित्ति पर असंख्य चित्र बनाती रहती है। कोई एक ही चित्र देखकर उसमें रमित हो जाता है, अर्थात् उसकी गति रूद्ध हो जाती है, तब एक कुण्ठा व्याप्त रहती है, ऐसी कुण्ठा के पार ही वैकुण्ठ भोग मिलता है जो निजतः बन्ध है ऐसी दशा में 'ज्ञान बन्ध' का निर्वचन आचार्यों ने किया है। काल सापेक्ष अवस्था के अधीन

निरनभास सत्ता के आभास उदित-तिरोहित होते रहते हैं- निरंश के सांश और निरंजन के सांजन होने की प्रक्रिया का रहस्य कवि को ज्ञात रहता है, कारण वह क्रान्तदर्शी है-

नियति कृत नियम रहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम् (काव्य प्रकाश) भारती की प्रसन्न मूर्ति।

कवि की क्रान्तदर्शिता त्रिकाल बाधित नहीं है काल चेतना से परे वह महाकालमय हो जाता है, अस्मिता की ग्रन्थि टूट जाती है, अस्तु।

'सप्तैते चिर जीविनः' की गणना में अश्वत्थामा अग्रणी है-

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषणः।

कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः।।

जिस महापुरुष को उनका साक्षात्कार हुआ उन्होंने बताया कि एक दिन प्रदोष काल की संध्या अश्वत्थामा ने सुवर्ण रेखा की सहकारिणी के तट पर कोकर में की थीं उनके मस्तक में वहाँ गड्ढा था जहाँ से मणि निकाल ली गयी। उस स्थल का वैशिष्ट्य वहाँ के विशाल यूरोनियम भण्डार में निहित हैं रॉंची पर्वत के पादमूल से सुवर्ण रेखा निकली साथ ही सहवाहिनी ने कोकर का स्पर्श किया-वहीं एक विशाल पुरुष सन्ध्या कर रहा था। प्रायः पाँच फुट की आसीन मूर्ति खड़ी होने पर लगभग दूनी हो गयी, कुछ वार्ता भी हुई जो वैदिक संस्कृत भाषा से भिन्न रही यतः वे उन १२ (बारह) मूल वर्णों में निष्णात थे जहाँ से विश्व की सभी भाषाएँ निकली हैं- अतः अश्वत्थामा की वाणी समझने मे कठिनाई नहीं हुई। सन्ध्योपरान्त अश्वत्थामा अदृश्य हो गए फिर कभी नहीं आये।

ऐसे महानुभाव महती चेतना सम्पन्न लोगों के दर्शन अकृत पुण्योदय से ही होते हैं। वे देश और काल की सीमाओं से परे हैं। सुतरां कौण्डिन्य देशांतर प्रवास या कालान्तर संचार विस्मय की बात नहीं।

चाणक्य के नामों में भी कौण्डिन्य अग्रस्थानीय है-

कौण्डिन्योवप्रनाभः कुटिलश्चणकात्मजः

द्रामिलोपक्षिल स्वामी विष्णुगुप्तो गुश्चरणः।।
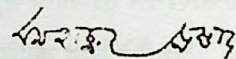
इस काव्य के प्रणेता डॉ॰ सुशील कुमार पाण्डेय विदर्भ के कुण्डनपुर मूल के महामानवों की कृपा से कवि की चेतना इसके प्रति उन्मुख हुई– यह हर्ष की बात है। आशा है भविष्य में ऐसी सुकृतियों से जीवोपकार में वे लगे रहेंगे। इति शिवम्।

आश्विन पूर्णिमा २०५९ वि॰ ससाधुवाद

तदनुसार सोमवार

२१-१०-२००२ ई॰

(रत्नशंकर प्रसाद)

□□

डॉ० फतह सिंह

डी० लिट्०-हरजी डालमिया,

कुम्भा, साहित्य-मनीषी तथा

साहित्य भूषण आदि पुरस्कार प्राप्त,

सिन्धु लिपि के खोजकर्ता, पूर्व निदेशक

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर।

डॉ० सुशील कुमार पाण्डेय के 'कौण्डिन्य' पर दो शब्द लिखते हुये, मुझे हार्दिक हर्ष हो रहा है। सर्वप्रथम तो मैं श्री कुबेरनाथ राय जी को ससम्मान स्मरण करता हूँ जिनकी प्रेरणा से इस ग्रंथ की रचना हुई। श्री राय का कथन पूर्णतया उचित है कि 'कौण्डिन्य' एक ऐतिहासिक व्यक्ति होते हुये भी एक प्रतीक है जेसे कामायनी का मनु। फिर भी पाण्डेय जी ने 'महानायक कौण्डिन्य के संदर्भ में'' विभिन्न इतिहासकारों की कृतियों से बहुत कुछ सामग्री एकत्र की है और इस विषय में एक स्पष्ट शोध की नितान्त आवश्यकता को भी अनुभव किया है। अतः इस सम्बन्ध में भी यहाँ कुछ कहना उचित होगा।

कौण्डिन्य एक व्यक्ति या वंश अथवा गोत्र

इर्स दिशा में, सर्वप्रथम डा० पाण्डेय द्वारा उद्धृत सामग्री की एक संक्षिप्त समीक्षा करना अपेक्षित प्रतीत होता है अधिकांश विद्वानों ने कौण्डिन्य को कंबोज राज्य की स्थापना करने वाला बताया परन्तु आर० सथियानाथियर ने 'बाली और बोर्नियो'' पर प्रकाश डालते हुये, कौण्डिन्य नामक एक वंश का उल्लेख किया है जिसका शासन ५१८ ईसवी में भी था, जबकि उक्त कंबोज राज्य के संस्थापक कौण्डिन्य को प्रथम शताब्दी ई० का माना जाता है। इसके साथ ही डा० राजबली पाण्डेय के इस कथन पर विचार करना उचित है कि कौण्डिन्य द्वारा स्थापित राज्य में स्याम और चीन का कुछ भाग भी सम्मिलित था तथा उसकी स्थापना भारत के पूर्वोत्तर प्रदेशीय लोगों ने की ऐसी स्थिति में, ५१८ई० में विद्यमान कौण्डिन्य राजवंशका आरंभ उससे कुछ पहले ही मानना पड़ेगा। इस प्रसंग में कौण्डिन्यराज्य का जो नाम चीनी परंपरा में प्रचलित है, वह भी कुछ उपयोगी संकेत देता है।

कौण्डिन्य का फूनान राज्य

चीनी भाषा में कौण्डिन्य के जिस राज्य का नाम 'फूनान' था वह संभवतः 'भूतान' का चीनी रूपांतर है। 'भू' के साथ विस्तारपूर्वक 'तन' धातु से निष्पन्न इस नाम का अर्थ होगा 'भू' का विस्तार। यह इंगित करता है कि उक्त राज्य के मूल संस्थापक ने अपने नये राज्य की स्थापना को भारत-भू-विस्तार मानते हुये भी उसके नाम में 'भारत' का नाम न जोड़ने की चतुराई की थी, क्योंकि वह उस राज्य में रहने वाले मूल निवासियों को यह नहीं अनुभव कराना चाहते थे कि उन पर विदेशी शासन लादा गया है। निस्संदेह, जैसा कि पाण्डेय जी ने अपने महाचरित नायक के चरित्र का चित्रण करते हुये संकेत दिया है, भारतीयों ने विदेशों में जहाँ भी अपनी संस्कृति का विस्तार करने के लिये काम किया वहाँ उनका हमेशा 'समरसता और आत्मीयता' के जीवन मूल्यों पर जोर रहता था न कि अपने स्वार्थपूर्ण शोषण और उत्पीड़न का। यही कारण है कि उन महानुभाव तपस्वियों के नामों से भी हम प्रायः सर्वथा अनभिज्ञ हैं जिन्होंने भारतीय संस्कृति को पूर्व से पश्चिम तक सर्वत्र फैलाया।

भूतान, भूटान और फूनान

इस प्रसंग में, इस संभावना पर भी विचार करते हुये, गंभीर गवेषणा करनी होगी कि कौण्डिन्य वंश या गोत्र के साम्राज्य का प्रारंम्भ जहाँ से हुआ वह भारत की पूर्वोत्तरीय सीमा पर स्थित आज का भूटान भी हो सकता है क्योंकि 'भूतान' का 'भूटान' हो जाना, भाषावैज्ञानिक दृष्टि से, जैसा सहज है वैसा ही 'भूतान' का 'फू -नान' में रूपान्तरित होना भी है। सम्भव है कि भारतीय संस्कृति के विस्तार की जो यात्रा, डा राजबली पाण्डेय के अनुसार भारत के लोगों द्वारा प्रारम्भ की गई उसका प्रथम चरण यही भूभाग (भूटान) रहा हो जो ५१८ ईस्वी तक बढ़ते बढ़ते बाली तथा बोर्नियों में भी जा पहुंचा हो। वही विशाल राज्य जब परवर्ती काल में छिन्न भिन्न होना प्रारम्भ हुआ, तो भी अन्त में उसका जो भाग अवशिष्ट होकर भारत के निकटतम बना रहा वही भूतान आज 'भूटान' के नाम से जाना जाता है। अतः इस समस्या को सुलझाने में वर्तमान भूटान के प्राचीनतम इतिहास से सहायता मिलना सम्भव है।

भूतान-स्थापना की पृष्ठभूमि

उक्त 'भूतान' (फूनान) की स्थापना की प्रेरक पृष्ठभूमि पर विचार करते

हैं तो स्वभावतः सिकन्दर महान् के आक्रमण पर ध्यान जाता है जिससे प्रेरित होकर आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य ने भारत में एक दृढ़ साम्राज्य की आवश्यकता अनुभव करते हुए मगध के नन्द-राज्य को समाप्त कर चन्द्रगुप्त को राज्यसिंहासन पर विराजमान किया था। यह समस्त कार्य जिस कूटनीति के साथ संपन्न किया गया उसी को पुनः हम उन आश्चर्यजनक घटनाओं में पाते हैं जिनके द्वारा उस राज्य को सुदृढ़ एवं विस्तृत किया गया। इन घटनाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण सैल्यूकस की बेटी से सम्राट चंद्रगुप्त का विवाह रचाना है। इसके फलस्वरूप भारत की पश्चिमी सीमा पर सिकंदर के उत्तराधिकारी सैल्यूकस से घनिष्ठता स्थापित करके मौर्यराज्य की जो सुरक्षा और दृढ़ता निश्चित की गई थी उसी का एक अन्य रूप चाणक्य के उस सफल प्रयास से देखा जा सकता है जिसके फलस्वरूप उसने अपने स्थान पर पूर्व नन्द राज के महामात्य राक्षस को बैठाकर चन्द्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य को आंतरिक दृढ़ता भी प्रदान की थी। इस कार्य में चाणक्य की जो कूटनीतिक उदारता और चतुराई दिखाई पड़ती है उसी के संदर्भ में उनका मगध राज्य से एकदम अलग होकर पूर्ण अज्ञातवास ग्रहण करना भी है। आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य का यही राजनीतिक दाक्षिण्य हमे उनके अर्थशास्त्र में वर्णित उन विभिन्न नीतियों तथा उपायों में देखने को मिलता हैं जिन्हें वे राज्य को दृढ़ता प्रदान करने के लिए आवश्यक समझते थे। इस दिशा में जहाँ वे शत्रु राज्यों को समाप्त करने में घोर कुटिलता के पक्षपाती थे वहीं मित्रराज्यों को स्वपक्ष में रखने के लिए अपार उदारता का भी प्रयोग करने के पक्षधर थे।

कौटिल्य से कौण्डिन्य

अतः यह भी असम्भव नहीं कि यही दाक्षिणात्य ब्राह्मण भारतीय संस्कृति के भू-विस्तार के लिए उस भूतान नामक राज्य की स्थापना में प्रवृत्त हुआ जिसे चीन देश के निवासी 'फूनान' के नाम से पुकारते थे और आज वही भूटान के रूप में अवशिष्ट है। इस सांस्कृतिक भू-प्रसार के कार्य में यह भी असम्भव नहीं कि उन्हें उन बौद्धचीनी यात्रियों से भी सहयोग मिला हो जो इस देश में मौर्य शासन काल में भारत मे आते जाते रहे। संभवतः चाणक्य ने अपने अज्ञातवास को अक्षुण्ण रखने के कार्य में चीनी यात्रियों से भी साँठ गाँठ की हो जिसके कारण उनमें से किसी ने आचार्य विष्णुगुप्त के किसी कार्य का उल्लेख नहीं

किया। इसी कारण कुछ लोग आश्चर्य व्यक्त करते हैं कि मौर्यकालीन चीनी यात्री ऐसे महापुरुष के विषय में चुप क्यों हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि स्वयं विष्णुगुप्त ने आत्मविज्ञापन से दूर रहने का सदा प्रयत्न किया और मौर्यराज्य की स्थापना तथा दृढ़ीकरण मे सुप्रवृत्त होते हुये भी अपने सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्र में मगध या चन्द्रगुप्त मौर्य का नाम तक नहीं लिया। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि उन्होंने ने अपने अज्ञातवास को सर्वथा गुप्त रखने के लिये अपने कौटिल्य नाम को ही फूनान साम्राज्य में 'कौण्डिन्य' रूप दिया हो, क्योंकि वे अपने मूल व्यक्तित्व को सदा ही परोक्ष में रखने के पक्षपाती थे।

इस बात का पता हमें उनके अर्थशास्त्र से भलीभांति चलता है। तद्विषयक एक उदाहरण ही पर्याप्त है जिसका सम्बन्ध अर्थशास्त्र के 'विनयाधिकरण' नामक प्रथम खण्ड से है। वहाँ वे अर्थशास्त्र के रचयिता रूप में अपने को 'कौटिल्य' नाम देते है–

सुखग्रहणविज्ञेयं तत्वार्थपदनिश्चितम्।
कौटिल्येन कृतं शास्त्रं विमुक्तग्रंथविस्तरम्।

यही नहीं जब वे 'दंडनीति' के विषय पर चर्चा करते हुये विभिन्न आचार्यों के इस मत का उल्लेख करते हैं कि 'दंडनीति' ही एक विद्या है जिसके अंतर्गत सर्वविद्याओं का स्थान है, तो वे साथ ही उसका प्रतिवाद करते हुये 'चतस्र': एव इति कौटिल्य की घोषणा भी करते हैं और आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता तथा दंडनीति नामक चारों विद्याओं पर जोर देते हैं। फिर भी वे आन्वीक्षिकी को प्रथम स्थान देते हैं, क्योकि यही वह विद्या है जो अन्य तीनों विद्याओं के 'बलाबल' को विभिन्न युक्तियों द्वारा निर्धारित करती हुई लोकोपकार करती है। अतः अंत में आन्वीक्षिकी की प्रशंसा इस प्रकार की गई है–

प्रदीपः सर्वविद्यानां, उपायः सर्वकर्मणाम्।
आश्रयः सर्वधर्माणां, शश्वदान्वीक्षिकी मता।।

व्यावहारिकता द्योतक व्यक्तित्व

वास्तव में, आन्वीक्षिकी विषयक उक्त वचन मनुष्य के व्यावहारिक और लौकिक पक्ष का द्योतक है। इसीलिये अर्थशास्त्र में, आन्वीक्षिकी को योग और सांख्य से युक्त लोकायत दर्शन के रूप में परिभाषित किया गया है। लोकायत

का शाब्दिक अर्थ जीवन के लौकिक पक्ष का विस्तार, परंतु कालांतर में लोकायत को नास्तिक दर्शन माना जाने लगा। योग और सांख्य द्वारा कौटिल्य अर्थशास्त्र ने उसे आध्यात्मिकतापरक लोकजीवन का दर्शन बना दिया। इसी के लिये गीता में 'लोकसंग्रह' शब्द प्रयुक्त हुआ। अतः आन्वीक्षिकी को वह विवेक कह सकते हैं जो योग और सांख्य दर्शन पर आधारित होकर लोक-जीवन की समीक्षा में रत रहता है। दूसरे शब्दों में, अर्थशास्त्र का 'लोकायत' योग और सांख्य पर आश्रित होने के कारण एक ऐसा जीवन दर्शन बन गया जिसमें व्यावहारिकता तथा आध्यात्मिकता का एक साथ समावेश संभव है। अपने ऐसे ही राजनीतिक व्यक्तित्व के लिए अर्थशास्त्र के लेखक चाणक्य ने व्यंगात्मक 'कौटिल्य' नाम का प्रयोग किया है। पुनः जब उस महापुरुष को मौर्य-साम्राज्य को सुदृढ़ता देकर अज्ञातवास में भारतीय संस्कृति के भू-विस्तार (भूतान-फूनान) योजना को अपनाना पड़ा, तो संभवतः इसीलिए उन्हें अपने सुप्रचलित हुये 'कौटिल्य' नाम को कौण्डिन्य' रूप देना पड़ा हो। कुंडिन, शिव का एक नाम है और उसकी शक्ति को कुंडिनी कहा जा सकता है। अतः'कौण्डिन्य का अर्थ शिव शक्ति का उपासक भी हो सकता है। डा० पाण्डेय द्वारा उद्धृत विजेन चटर्जी के मतानुसार, कौण्डिन्य को एक शिवभक्त रूप में भी माना जा सकता है।

इसके अतिरिक्त, वैदिक परंपरा में आध्यात्मिक साधना की दृष्टि से मनुष्य को 'त्रैगुण्य प्रधान' जीवन से ऊपर उठकर निस्त्रैगुण्य स्तर पर जाना अपरिहार्य माना गया है। गीता में कृष्ण प्रथम तो 'वेदवादरता' को 'भोगैश्वर्यप्रसक्त' जीवन कहकर निंदनीय मानते हुये अर्जुन को निस्त्रैगुण्य होने का परामर्श ही देते हैं। इस दृष्टि का मूलाधार गोपथब्राह्मण का वह दृष्टि कोण है जिसके अनुसार, सर्पवेद, पिशाचवेद, और असुरवेद के स्तर से ऊपर उठकर पुराणवेद एवं इतिहास वेद द्वारा ऋक् यजु, साम और ब्रह्मवेद नामक आध्यात्मिक स्तर पर पहुँचने की आवश्यकता है। अतः यह भी संभव है कि वेदवेत्ता आचार्य विष्णुगुप्त ने अपने लिये प्रथम स्तर की दृष्टि से कौटिल्य तथा दूसरे स्तर की दृष्टि से कौण्डिन्य नाम देना पसंद किया हो। इस बात को ध्यान में रखते हुये, कौटिल्य होने को व्यावहारिक राजनीतिक जीवन को छोड़ कर एक त्यागी, विरक्त एवं परोपकारी जीवन को अपनाना भी कहा जा सकता है। इस संदर्भ में,

वेद शब्द में कोई ग्रंथ अभिप्रेत नहीं है। यहाँ 'वेद' शब्द उस वृत्ति या भावना का बोधक है जिस को लेकर मनुष्य अपने जीवन का उत्तरोतर विकास करता है। इसी आध्यात्मिक वृत्ति का जिन चार ग्रन्थों में वर्णन हुआ उनके नामकरण का आधार भी उक्त वेद का होना ही स्वाभाविक है।

महानायक का चरित्र-चित्रण

अतः यह बड़े हर्ष का विषय है कि डा० पाण्डेय ने अपने महानायक कौण्डिन्य का जो चरित्र-चित्रण किया है वह व्यक्तित्व विकास की इसी धारणा के अनुरूप प्रतीत होता है। तद्नुसार प्रथम सर्ग का नाम 'अध्ययन' (अधि+अयन) सार्थक है, क्योंकि इसमें चरितनायक कौण्डिन्य को गुरुकुल-शिक्षा से अपने जीवन-पथ (अयन) को अधिग्रहण करने की क्षमता उत्तरोतर मिलती है। उसी ओर संकेत करने वाला 'पथ' नामक तृतीय सर्ग है। परन्तु इस पथ को सम्यक् अधिग्रहण करने के लिये अपने स्थूल 'स्व' के तमोमय स्तर से ऊपर उठते हुये 'उत्तर' स्वं पर निरंतर दृष्टिपात करते हुये उस 'उत्तम' स्वर्ज्योति तक पहुंचने की क्षमता अर्जित करना आवश्यक है जिसका वेद मे पारिभाषिक नाम 'सूर्य' है:-

उदवयं तमसस्परि स्वं पश्यन्तः उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरूत्तमम्।।

परन्तु इस पथ पर चलने से पूर्व अपने स्थूल 'स्व' को अतिक्रमण करने की शक्ति को अर्जित करना आवश्यक है। इसी का पारिभाषिक नाम स्वाति (स्व+अति) अर्थात् स्व को अतिक्रमण करने की शक्ति है। प्रस्तुत महाकाव्य में इसी शक्ति का प्रतीक 'स्वाति' नामक वह गुरुकुल-कन्या है जिससे कौण्डिन्य प्रेम करने लगता है, परन्तु वह अंततोगत्वा कौण्डिन्य को आवश्यक त्यागमय जीवन व्यतीत करने में पूर्ण सहयोग देती हैं यह तर्कसंगत भी है, क्योंकि उन दोनों ने गुरुकुल में जिस 'संस्कृति' की शिक्षा पाई है उसका लक्ष्य जीवन मे 'स्व' पक्ष से ऊपर उठकर' 'उत्तर' स्व' को अधिग्रहण करते हुये 'उत्तम' स्व' तक पहुँचना है जो वस्तुतः ब्रह्म ज्योति है। इस निमित्त 'सहस्त्रदल कमल' की 'नाल' को पकड़ना अति उपयोगी है। इसी ओर संकेत करने वाला 'नालंदा' नामक चतुर्थ सर्ग है। नालंदा वह इतिहास-प्रसिद्ध बौद्ध विश्वविद्यालय भी है जो 'निर्वाण' की दिशा देने वाला है। गीता का 'ब्रह्मनिर्वाण' भी वस्तुतः वही है।

पंचम सर्ग का नाम 'अश्वत्थामा' भी सार्थक है। वेद में (ऋ१.१७०.१) में 'अश्व' उस महाशक्ति का नाम है जिसका 'श्व' '(कल) नहीं होता, अर्थात् जो सनातन रहने वाली है। हम सभी गीता के अनुसार उस अश्वत्थ की शाखायें हैं जिसमें यह अश्व स्थित है। अश्व के स्थित होने के कारण उसका नाम अश्वत्थ है। इस दृष्टि से प्रत्येक मानवात्मा अश्वत्थ है क्योंकि उसमें भी यह अश्व रूप प्रजापति विराजमान है, परन्तु जब तक उसके भीतर अज्ञानांधकार की घोर 'अमा' छाई रहती है, तब उसका पारिभाषिक नाम अश्वत्थामा (अश्वत्थ+अमा) होता है। महाभारत का अश्वत्थामा उसी का प्रतीक है। महाभारत में इसी घोर अज्ञान से वशीभूत होकर अश्वत्थामा द्रोपदी के निरीह बच्चों की हत्या करने में भी संकोच नहीं करता। परन्तु प्रस्तुत महाकाव्य में अश्वत्थामा अपने उस महापाप को स्वीकार करके दु:खी होता है। अतः इस प्रायश्चित के कारण वह कौण्डिन्य के गुरु बनने में उपयुक्त होता है और कौण्डिन्य को शस्त्र प्रदान करता है तथा उसे कम्बोज यात्रा की सफलता का आशीर्वाद देता हुआ एक आदेश भी देता है जिसकी ओर संकेत करने वाला काव्य का आदेश नामक सप्तम सर्ग है। आदेश के अनुसार उसे कंबोज पहुँच कर चण्डी देवी का मंदिर बनवाकर उसमें उस उत्तम 'पानपात्र की स्थापना करनी है जो कौण्डिन्य को अपने गुरु से प्राप्त हुआ था।

इस प्रकार, कौण्डिन्य की जो ज्ञान-गंगा अध्ययन नामक सर्ग से प्रारंभ हुई और नालन्दा की यात्रा से आगे बढ़ी वह प्रायश्चित करने तथा कामाख्या देवी से आशीर्वाद प्राप्त करने वाले अश्वत्थामा को गुरु बनाने में सुसमृद्ध हो गई। इस तथ्य की अनुभूति करके, कौण्डिन्य सहर्ष बोल पड़ता है:-

मुख पर संस्मिति की रेखा, उत्साह जगा फिर मन में।

लक्ष्य सनातन देखा, मैंने मानव जीवन का।।

विश्वास हृदय में आया, रोमांच हुआ फिर तन को

मानव सेवा करने का, यह सुन्दर अवसर आया।

कौण्डिन्य के इस उद्‌गार में, मानव जीवन के जिस सनातन लक्ष्य की ओर संकेत है उसका ज्ञान उसी गुरु से मिल सकता है जो अपने अश्वत्थामा स्वरूप की 'अमा' (घोर तमिस्त्रा) से मुक्त हो चुका है और अपने पूर्वकृत सभी संभावित पापों का सम्यक् प्रायश्चित कर चुका है।

कौण्डिन्य का उक्त उद्‌गार 'पत्तन' नामक अष्टम सर्ग के प्रारम्भ से उद्‌धृत है, जहाँ वह उस 'स्वाति' का स्मरण भी करता है जिसे उसने स्वार्थपूर्ण संकुचित 'स्व' को अतिक्रमण करने वाली आत्मशक्ति का प्रतीक माना है। गुरु कृपा से इस आत्मशक्ति की धाराओं के शरीर में लहराने के लिये वेग प्राप्त होता है। इन्हीं शक्तिधाराओं को चरितनायक 'स्वाति की लहराती लटों' के रूप में याद करता है:-

पुलकित इच्छायें मेरी, पुलकित जन-जीवन देखा।
स्वाती की लटें घनेरी, संस्मरण पटल पर छाई।।

स्वाति की लटें घनेरी उक्त आत्मशक्ति की उन सघन धाराओं की ही प्रतीक हैं जो साधक को लक्ष्य की ओर बढ़ाती है, तो वह गंगा सागर-संगम पर स्थित उस 'पत्तन' पर पहुंचता है जहां से 'महोदधि' को पार करने वाली यात्रा प्रारंभ होगी। यह महोदधि वस्तुतः उस 'प्राणार्णव' (माश ७,५,२,५१) का प्रतीक माना जा सकता है जो सविकल्पक समाधि में सभी शक्तियों के केन्द्रीकरण से बनता है। इसी ओर संकेत करने की दृष्टि से उक्त सर्ग को 'महोदधि' नाम दिया गया प्रतीत होता है। इसका साक्षात्कार परमात्मा से प्राप्त उस शक्तिशृंखला के द्वारा ही संभव है जिसका प्रतीक उड़ते हुये गरुड़ पक्षियों की वह अपूर्व पंक्ति है जिसे महाकाव्य का चरितनायक 'वैनतेय' नामक दशम सर्ग में सहर्ष देखता हुआ प्रस्तुत किया गया है। 'वैतनेय' भारतीय परंपरा में उस विष्णु का वाहन है जिसकी 'क्षीरसागर' में श्वेतवर्णा शय्या विष्णुपुराण में निर्विकल्पक समाधि की प्रतीक है। अतः 'वैतनेय' सर्ग के पश्चात् ग्यारहवें सर्ग का नाम विष्णु रक्खा गया है। इससे यहां संकेत मिलता है कि अब व्यष्टिगत साधना का चरम लक्ष्य दृष्टिगोचर हो रहा है।

परन्तु मानव के सामाजिक एवं पार्थिव जीवन तब ही पूर्ण होगा जब हमें सुख-समृद्धि की प्रतीक रूप में कल्पित 'स्वर्णभूमि' प्राप्त हो। इसी भूमि के दृष्टि गोचर होने का संकेत हमे 'पर्व' नामक १२वें सर्ग में मिलता है। वही भूमि तो कम्बोज है जिसकी खोज में महाचरित नायक समुद्र यात्रा के महाभयंकर अनुभवों को झेलते हुये अभी तक बराबर प्रयत्नशील है। अतः चरम लक्ष्य स्वरूप कंबोज की प्राप्ति की संभावना हर्ष का सूचक चित्रा नाम से १३वाँ सर्ग रक्खा गया है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के साथ ही, कौण्डिन्य को कंबोज की

भूमि पर एक वल्कलवसना युवती दिखाई पड़ती है जिसका सुखद परिचय प्राप्त करके वह उसे कौशेय वस्त्र भेंट करता है और साथ ही अपने गुरु से प्राप्त शर के संधान द्वारा उसे अपने शौर्यबल से प्रभावित करना भी नहीं भूलता और उस युवती को चित्रा नाम देता है। इसलिये, यह सम्पूर्ण वृतान्त जिस १३ वें सर्ग में मिलता है उसका नाम भी चित्रा है। वह अपने प्रथम परिचय में ही कौण्डिन्य को बता देती है कि वह अपनी भूमि की वह रानी होगी जिसका नाम 'सोमा' होता है।

सोमा शब्द उस वैदिक 'सोम' की ओर संकेत करता है जो अलौकिक आनन्द के साथ ही पार्थिव सुख-समृद्धि तथा अन्य भौतिक सुखों का भी सूचक है। इस प्रकार चित्रा का सोमा रूप वस्तुतः पूर्वोक्त 'स्वाति' के उस चरम रूप का ही प्रतीक सिद्ध होता है जिस ओर वह मनुष्य के निम्नस्तरीय 'स्व' को अतिक्रमण करती हुई अन्ततोगत्वा पहुँचती है। इसीलिये, लेखक ने चित्रा सर्ग में, कौण्डिन्य के इन दोनों रूपों को इस प्रकार याद करते हुए चित्रित किया है:-

स्वाती ने उर को छीना
मन चित्रा ने मथ डाला।
फिर चैत्र पवन ने चलकर
तन को बेसुध कर डाला।।

प्रतीकवादी संकेतों को ध्यान में रखकर, यदि इस उद्धरण को समझने का प्रयत्न करें, तो इस निष्कर्ष तक पहुंचने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए कि मनुष्य के 'स्व' नामक संकीर्ण पक्ष का उत्तरोत्तर अतिक्रमण करने वाली 'स्वाती' शक्ति सर्वप्रथम हृदय को प्रभावित करती हुई ज्ञानशक्ति क्रियाशक्ति व भावना शक्ति को साथ लेकर निरंतर प्रगति करती रहती है, परन्तु अंततोगत्वा जो रूप ग्रहण करती है उससे वह पूरे मानस को ऐसा आप्लावित करती है जिससे मनुष्य की उक्त तीनों शक्तियाँ अत्यधिक सक्रिय होकर व्यक्तिगत को ही नहीं अपितु समष्टिगत जीवन के आंतरिक और बाह्य पक्षों को सुदृढ़ करने का अद्भुत एवं अदम्य उत्साह अपनाती है। इसी दृष्टि से उसे चित्रविचित्र मानकर 'चित्रा' नाम दिया गया। यही चित्रा वह भावी 'सोमा' है जो मनुष्य -व्यक्तित्व के आन्तरिक एवं बाह्य आयामों को सर्वथा सुखी, समृद्ध और सफल बनाने की

शक्ति को सोमा कहा जा सकता है। इसी की प्रतीक वह रानी है जो कौण्डिन्य को राजगद्दी प्रदान करके कंबोज में एक पुरुष प्रधान समाज का सूत्रपात करती है और इस हेतु उस सोमपुरुष की चिरसंगिनी बनने का व्रत लेने के लिये कौण्डिन्य के कहने पर वैदिक पद्धति से विवाह स्वीकार करती है।

इसके पश्चात् दोनों साथ-साथ सुवर्णभूमि की पदयात्रा करते हैं जहाँ मीनाङ, मेनाम और इरावदी नामक तीन नदियाँ बहती हैं। अतः इन्हीं तीन नदियों के नाम पर तीन सर्गों में इस यात्रा का काव्यात्मक वर्णन दिया गया है। इस क्षेत्र के लोगों के आचरण में, यम, नियम, संयम का कोई स्थान नहीं है नरनारी विवाह की प्रथा नहीं है। स्वच्छंद कामक्रीड़ा और यौन सम्बन्ध की प्रथा है। अतः स्त्री को भोग्या तथा पुरुष को भोगी समझा जाता है। इसी कारण एक क्रंदन करती द्वादशवर्षीया कन्या के उत्पीड़न करने के पश्चात् हर्षित होने वाले दो पुरुषों पर कौण्डिन्य शस्त्र प्रहार करके उन्हें मार गिराता है और सोमा कन्या के घर पर जाकर उससे और उसके घरवालों से सहानुभूति प्रकट करती है। इसीप्रकार इरावदी नदी के क्षेत्र में अचानक कौण्डिन्य के सिर पर पत्थर गिरता है जो जंगली लोगों की करामात है। अतः कौण्डिन्य और सोमा का एक जगह जंगली लोगों ने स्वागत किया तो उनके सामने नरमांस परोस दिया। इस पर वे खिन्न होकर बिन खाये ही उठ गये और उन्हें समझाया-

> मैंने उनको समझाया, इस बर्बरता को रोको।
>
> मत महाकाल के मुख में तुम मानवता को झोंको।।
>
> सोमा उसकी भाषा में समझाकर उनसे बोली-
>
> 'मत खेलो बंधु हमारे मानव शोणित से होली।
>
> नरवध न बंद यदि होगा आयेगी शांति कहाँ से।।"

साथ ही उन दोनों ने वहाँ के लोगों को भ्रातृभाव, समानता और समरसता लाने वाली श्रुति संस्कृति का पाठ पढ़ाते हुये वनस्पतियों और औषधियों का प्रयोग करना सिखाया। इस प्रसंग में वह सोमा को संबोधित करते हुये कहता है-

> बहु औषधि ज्ञान सँभालो अयि सोमा! संगिनि मेरी।
>
> कुछ ऐसा करो उपक्रम सुख स्वास्थ्य लगायें फेरी।।

कर दीनजनों की सेवा हम जीवन सफल बनायें।

X X X X

जग में सब लोग सुखी हों सब बन जायें हितकारी।।

सब भेद भाव को त्यागें, मुसकाये धरती सारी।

श्रुति संस्कृति विकसे कैसे संसृति के हर कोने में।

हम बने सहायक कैसे सबके उन्नत होने में।

इस प्रकार, महाकाव्य के१४वें से लेकर १६वें सर्ग तक उनके नामकरण में जिन तीन नदी नामों का प्रयोग हुआ है उन तीनों का प्रतीकवाद उन तीनों मनोवैज्ञानिक शक्तियों की ओर संकेत करता प्रतीत होता है जिनके आधार पर क्रमशः कामाख्या, चण्डी और गंगा नामक देवियों का भी यहां श्रद्धाभक्तिपूर्वक उल्लेख हुआ है। ये शक्तियां क्रमशः, क्रियाशक्ति, भावनाशक्ति और ज्ञानशक्ति प्रतीत होती है। इस त्रिविध क्षेत्र में सोमपुरुष और सोमा रानी की संयुक्त यात्रा द्वारा जिस श्रुति-संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में प्रयास हुआ है उसके अन्तिम परिणाम 'कला' नामक सर्ग में प्रकट होता है। वहाँ हम कौण्डिन्य-सोमा के युगल द्वारा जिन विविध कलाओं को कम्बोज में आकर प्रोत्साहन देते हुए पाते हैं उससे संकेत मिलता है कि महाकाव्य के सिद्ध कलाकार लेखक ने यह संदेश देना चाहा है कि उक्त शक्तियों के आध्यात्मिक और नैतिक स्वरूप को विकसित करके ही मानव जीवन को समुचित कलाप्रेमी बनाया जा सकता है। इसी दृष्टि से कलासर्ग में इस ओर संकेत करते हुए कौण्डिन्य के मुख से कहलाया गया है:-

मैने उनको बतलायी, वस्त्रोत्पादन की विधियाँ भी

थी उन्हें समझ में आयी, आवश्यक सभी कलाएँ।

सभी कलाओं में प्रमुख स्थान दिया गया है मूर्ति कला को। इसका चरम लक्ष्य है ईश्वर का साक्षात्कार जिसके विषय में महाकवि ने चरित्रनायक से कहलाया है:-

सेवा करना सिखलाया, सेवा से ईश्वर मिलता।

मंगलमय पथ दिखलाया, जिस पर चलना न कठिन था।।

ईश्वरप्राप्ति का सरल-मार्ग ही मूर्तिपूजा है जो जनसामान्य के लिए सहज और सुगम सिद्ध होती हैं अतः सर्वप्रथम कला की दृष्टि से सरलतम प्रतिमा 'शिवलिंग' के रूप में बनी और मंदिर में स्थापित हुईः-

शिवमन्दिर को था बनवाया मैंने पर्वत के उपर।

शिवलिंग सुभग रखवाया कर विधिवत प्राणप्रतिष्ठा।

जीवन मंगलमय करना, मैं प्रलयंकर से कहता

अविरल चेतनता भरना अलसाये जन-गण-मन में।।

इतना ही नहीं बहुत से देवालय बने और उनमें विभिन्न देवी-देवताओं की प्रतिमाएं स्थापित की गई जिससे सभी जनों को जप-तप साधन की सुविधा सुगमता से मिल सके:-

जनता मे चाहे जाते

अति सुभग देव-मंदिर थे।

हर ओर सराहे जाते

ये विपुल कला-मंदिर भी।।

मूर्तिकला और स्थापत्य कला के अतिरिक्त नाट्य, संगीत, नृत्य और शिल्प जैसी ललित कलाओं को भी प्रोत्साहन मिला:-

हरता विषाद था मन का,

शुभ नाट्यशास्त्र का सौष्ठव।।

नर्तन गायनवादन का,

संगीतशास्त्र का प्रचलन।।

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि विविध कलाओं के व्यावहारिक स्वरूप के अतिरिक्त उनके शास्त्रीय पक्ष की उपेक्षा भी नहीं हुई, क्योंकि कलाओं के शास्त्रीय पक्ष को जाने बिना उनके उस आधारभूत तात्विक पक्ष को नहीं जाना जा सकता है जिसमें श्रुति-संस्कृति की गहराई के दर्शन होते हैं। इसी दृष्टि से उक्त कलाओं के सन्दर्भ में यह भी कहा गयाः-

मैंने सबमें फैलायी, आर्यों की वैदिक संस्कृति।

थीं स्वर्ण भूमि तक आयी भारत की शिल्पकलाएँ।

इसी श्रुतिसंस्कृति के प्रचार-प्रसार में दत्तचित्त होकर कौण्डिन्य ने अपने जीवन-सर्वस्व को जिस सीमा तक समर्पित किया उसका संकेत भी महाकाव्य में बराबर दिया गया है:-

जग के तममय ऑगन में, आलोक विविध विधि बिखरे।

भू-अम्बर-गिरि-कानन में, श्रुति-संस्कृति अविरल विकसे।।

उक्त आलोक का बरसना ही प्रस्तुत महाकाव्य का प्रमुख लक्ष्य है। इसी दृष्टि से ग्रंथ के अन्तिम सर्ग का नाम 'आलोक' रखकर उसमें वैदिक संस्कृति के योग और यज्ञ, श्रेय और प्रेय पक्ष को प्रस्तुत करते हुए संस्कृति के आलोकमय पक्ष को उजागर किया गया है। लक्ष्य किसी संकीर्ण सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण को रखना नहीं, अपितु यह है कि-

सबका कल्याण सदा हो, सब हँसे तथा मुसकायें।

धरती सबको सुखदा हो, सब काम सिद्ध हो जायें।

हो कर्म निरत जन जीवन, शत वर्ष जिये हर मानव।

हों कर्मशील सब तन मन, सबका जीवन सार्थक हो।।

इस लक्ष्य की दिशा का प्रारंभ जीवन के गंभीर प्रश्नों से उलझने से नहीं, अपितु समुचित सेवा-भावना द्वारा उदारतामय जीवन अपनाने से होगा, अतः कहा गया:-

तप-सत्य-ज्ञान से बढ़कर जीवों की सेवा होती।

जन-सेवा में हो तत्पर, करुणा-ममतामय होकर।।

कल्याण समूचे जग का परमार्थ सौख्य में संभव।

हम निविड तिमिर में मग का शाश्वत प्रकाश बन जायें।।

इसी दृष्टि से कर्तव्य-निष्ठा पर जोर देते हुये, दिव्यानुभूति के बल पर भव-सागर को पार करने की दिशा में सामाजिक जीवन में समरसता, पारस्परिक सहयोग एवं स्नेह को लाने पर जोर देते हुये कहा गया:-

सब जन समरस हो जायें, सब भेदभाव मिट जायें।

मिलजुल कर हाथ बॅटायें, निज सुख-दुख में सब सबके।।

कर्त्तव्य-पंथ पर चलकर, हम परम तत्व को जानें।

दिव्यानुभूति के बल पर भवशोक सिंधु तर जाये।।

जग के तममय ऑगन में, आलोक विविध विधि बिखरे।

भू अम्बर, गिरि, कानन में, श्रुति-संस्कृति अविरल विकसे।।

सम्पूर्ण महाकाव्य के विषय का यह केवल संक्षिप्त परिचय है, इस सुंदर सरस और सुबोध कृति के लिये महाकाव्यकार डा०पाण्डेय हम सबके लिये विशेष साधुवाद के पात्र हैं। हिन्दी में अनेक महाकाव्य पहले से ही विद्यमान है। परन्तु आधुनिक पाठकों को श्रुति संस्कृति में प्रवृत्त करने वाली यह कृति निःसंदेह सबसे निराली है। आशा है सभी पाठक इस मत का अनुमोदन करेंगे।

१७ E/२५७
चौपासनी हाउसिंग बोर्ड
जोधपुर राजस्थान
११-११-२००२

फतह सिंह

(प्रो० फतह सिंह)

□□

कौण्डिन्यः एक विहंगम दृष्टि

डॉ० श्रीपालसिंह 'क्षेम'

(पूर्व विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय जौनपुर, साहित्य महारथी, साहित्य भूषण तथा रघुराज पुरस्कार आदि प्राप्त।)

सुलतानपुर के काव्य रचनाकार श्री सुशील कुमार पाण्डेय, प्राध्यापक संस्कृत-विभाग सन्त तुलसीदास महाविद्यालय कादीपुर की "कौण्डिन्य" नामक प्रबन्ध कृति को पढ़ने-देखने का अवसर मिला। प्रस्तुत रचना, रचनाकार की अनेक प्रकाशित काव्य-कृतियों के पश्चात् लिखित एक महत्वैषणा-सम्पन्न प्रणयन है। सर्जक की पृष्ठभूमि संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन-मनन से सुपुष्ट एवं भावयित्री प्रतिभा की क्षमताओं से सुसमन्वित है। विषय विचार और भाव-सद्भाव की सम्पदा प्रकृत काव्य में सर्वत्र विकीर्ण-प्रकीर्ण देखी जा सकती है। रचनाकार में जीवन के 'सत्य", 'शिव' और 'सुन्दर' के बोधावबोध भी सुस्पष्ट हैं, जो सामान्यतः नयी पीढ़ी के रचनाकारों में उपेक्षित ही रह जाती हैं। आज अपनी धरती की महतपरम्पराएँ, गौरव गाथाएँ, महत्त्ववृत्ति-प्रवृत्तियों के गाथ-प्रगाथों-मिथकों के प्रति नये रचनाकार की आस्थाएँ समूल हिल गयी हैं। अपने वर्तमान से वह इतना आच्छादित और इतिहास-ग्रस्त है कि समकालीन व्यवस्था-स्थितियों को देखते हुए उसे उनकी मूल्यवत्ता के प्रति कोई निष्ठा-शीलता अनुभव नहीं होती। आज हिन्दी नवलेखन में यह आस्था-संकट अत्यन्त मुखर और कुछ अंशों में दुःखद भी हो उठा है। अतीत के तथा-कथित गौरव-विन्दु उसके लिए अर्थहीन हो गये हैं। दूसरे शब्दों में वह अपनी धरती और सामाजिक-सामूहिक जीवन के व्यापक एवं मूलवर्ती, इतिहास-बोध की प्रवहमानता के प्रति भी अनिष्ठाशील प्रतीत होता है। पाश्चात्य-परवर्ती जीवनादर्शो एवं वादोन्मुखी विचारों के वात्याचक्र में इतना ऊभ-चूभ हो उठा है कि अपनी जातीय जीवन-दृष्टि ही उसे छूँछी और निस्तत्व लगने लगी हैं। भौतिक विलास और पार्थिव भोग

अब ऊँचे विचारों और त्याग-तितिक्षा के आदर्शों की अपेक्षा, मानव-जीवन के लिए उसे सर्वाधिक मूल्यवान आदर्श लगने लगे हैं। वह वर्तमान के संघर्षों से इतना आच्छन्न हो उठा है कि तथोक्त यांत्रिक वैज्ञानिकता, मनोवैज्ञानिकता स्वकेन्द्रित तार्किकता तथा सन्देहवाद ही उसके एकमेव जीवन-निकष बन गये हैं। वह अतीत को निरे पिछड़ेपन और वायवीयता की वस्तु समझने लगा है। उसके लिए परम्पराबोध का प्रश्न रूढ़ि बोध और गतानुगतिकता का प्रश्न बन गया है।

सन्तोष और प्रसन्नता का विषय है कि प्रकृत रचनाकार को अपना जातीय अतीत सर्वथा अनुर्वर और प्रगतिभ्रामक नहीं प्रतीत हुआ है। वह किसी जाति के इतिहास, पुरा-प्रकल्प और परम्परा को जातीय ऊर्जा और अग्र-सर्जकता की सजग प्रवहमानता मानता है, और उसका स्यात् यह विश्वास है कि जातीय पुरा-प्रकल्पों, इतिहास-प्रवाह और जीवनावबोध के सजग पुनर्मन्थन की आवश्यकता होती है और इस पुनरावलोकन, पुनर्परीक्षण तथा पुनर्मूल्यांकन से, जातीय विकास को नयी प्रेरणा और नूतन उन्मेष प्राप्त होते हैं। व्यष्टितः व्यक्ति चाहे-जैसे भी जी ले, पर किसी जाति और उसकी जीवन-धारा के मूलवर्ती ताप-प्रताप से सर्वथा कटकर, कोई भी राष्ट्रीय अस्मिता और पहचान संभव नहीं हो सकती । हमारी जीवनाकांक्षाओं की मूल दिशाएँ, वृत्ति-प्रवृत्तियों के मूल प्रतिमान हमारे जातीय अवदानों से विच्छिन्न होकर हमारे लिए विशेष प्रेरक और भविष्य के लिए उपादेय उन्मेषक नहीं सिद्ध हो सकते। सामान्य जन-मानस में जो जातीय तत्व परम्परा से प्रवहमान होते रहे हैं, उन्हें देश कालानुसार पुनर्जीवित, पुनः अनुप्राणित और नये सन्दर्भों में अनूदित करने की आवश्यकता, अपने स्थान पर सदैव मूल्यवती होती है। डॉ० सुशील कुमार पाण्डेय ने इस तत्व का गहराई से अनुभव किया है। "कौण्डिन्य' -कथा अपने जातीय लिखित वाङ्मय में उतने स्पष्ट रूप से भले ही न उभर कर सामने आयी हो, पर इस चरित्र कथा के बिखरे सूत्र प्रतिवेशी देश-जातियों के पुरा-कथ्यों में भी उपलभ्य है। सुप्रसिद्ध ललित निबन्धकार एवं सूक्ष्मदर्शी मिथक-चिन्तक श्री कुबेर नाथ राय ने, प्रणेता को इस चरित्र-सूत्र की ओर आकृष्ट और उद्बुद्ध किया है, यह एक दूसरी प्रसन्नता की बात है। डॉ० 'राय' का मन लोक-वाङ्मय और पुरा-प्रकथ्यों के गहरे और तत्त्वमय चिन्तन-अनुशीलन में साधनाभाव से रमता रहा है। लोक-पूजा, लोकधर्म और लोकवृत्त में निहित

जातीय मर्मों और प्रवृत्ति-सम्वेदों में वे पूरी भाव-मयता एवं सरसता के साथ रमे और रसे-बसे हैं। उनके सर्जक सुझाव की डोर पकड़ कर डॉ॰ 'पाण्डेय' ने स्वयं भी अन्वेषण और संग्रहण किया है। अनेक पुरा-तत्त्वज्ञों एवं इतिहास-चिन्तकों से भी उन्होंने यथा सम्भव सम्पर्क किया है। महानायक कौण्डिन्य के विषय में डॉ॰ 'राय' से जो जानकारी मिली है, उसके अनुसार वह 'भारतीय कोलम्बस' है जिसने कम्पूचिया का अन्वेषण किया और वहाँ की राजकन्या से विवाह कर वहाँ भारतीय संस्कारों से परिस्नात 'सूर्यवंश' का शिलारोपण किया। वह वृहत्तर भारत का एक महानायक था। 'राय' साहब ने अपनी निबन्ध पुस्तक 'मन-पवन की नौका' में इस चरित्र को अपनी कल्पना-सर्जना से मूर्त्त करने का सुन्दर प्रयास किया है। कम्पूचिया 'सुवर्ण भूमि' हो अथवा दक्षिण पूर्वी द्वीप-समूह, रचयिता के सामने इस इतिहास-भूगोल के निर्धारण का प्रश्न नहीं है, वह तो कौण्डिन्य जैसे पराक्रमी चरित्र की सृष्टि के माध्यम से, न केवल भारत के जन-मानस को अपनी मूलवर्ती वृहत्तर-भारतीय आकांक्षाओं की सनातनता से अवगत कराना चाहता है, अपितु वह उसके व्यक्तित्व कृतित्व की रंगमयी रेखाओं से, अपने जातीय शौर्य और महापौरुषीय और जिसमें पराक्रम के उस पक्ष से भी जोड़ना चाहता है जो जातीय जीवन की विराट् जिजीविषा से सम्बद्ध रहा है औरजिसमें अपने जातीय-मूल्यों का वह विश्व विरल प्रकाश भी संरवचित है जो कूप-मण्डूकता के आरोपों से प्रायः विस्मृत किया जाता रहा है। रचनाकार के समक्ष, छायावाद के प्रवर्त्तक, महाकवि 'प्रसाद' और उनके गौरवी महाकाव्य 'कामायनी' की प्रेरकता भी विद्यमान रही है, इसी कारण, उसमें न केवल जातीय जीवन की ऊर्जस्विता अपितु उसकी सनातन-शाश्वत मूल्यवत्ता के प्रति भी एक झुकात्र परिलक्षित होता है। 'कामायनी' के 'मनु' प्रलय की पीठिका पर एक नवीन सृष्टि की सर्जना के नायक भी बने हैं। कौण्डिन्य ने अपने पौरुष-पराक्रम के विक्रान्त प्रयासों से एक सुदूर भूमि में एक नये भारत का नव-निर्माण किया हैं मनु अपनी मन-तरंगों के चलते जीवन-संघर्ष के नव-नव सोपानों को पार करते, एक मनोवांछित 'आनन्द लोक' की सम्प्राप्ति करते हैं और कौण्डिन्य समुद्र की उत्ताल तरंगों से संग्राम लेता हुआ, गिरि-गह्वरों के बीच, एक नये सुख-शान्तिमय समाज के आलोक की प्रवर्त्तना करता है। हाँ, 'कामायनी-कार' की भाँति सारे कथानक का उपसंहार किसी शुद्ध दार्शनिकता की भूमि पर न होकर, 'कौण्डिन्य-कार' की रचना-भूमि

एक ऐसा सम्पन्न मानव-समाज है जहाँ सुख, शान्ति और और जीवन के उच्चतर मानवी मूल्य हैं जिसके लिए भारत विश्व-संस्कृतियों की संसृति में अलग जाना-पहचाना जाता रहा है, जहाँ भौतिकता और आध्यात्मिकता एकांगतः विच्छिन्न न होकर परस्पर एक दूसरे की सम्पूर्ति में संयोजित होती है। विश्व की समकालीन एकांगिता के सन्दर्भ में, 'कौण्डिन्य'-कार उस मूल भारतात्मा को उज्जाग्रत करने का पक्षधर है जो आज के विश्व-विघूर्णन और हिंसात्मक वात्याचक्र में, रचयिता के अनुसार, मानव कल्याण और विश्व-शान्ति का एकमेव राज-पथ है।

सम्पूर्ण प्रबन्ध "अध्ययन', 'स्वाती', 'पथ', 'नालन्दा', अश्वत्थामा', 'शाप', 'आदेश', 'पत्तन', 'महोदधि', 'वैनतेय', 'विष्णु,' 'पर्व', चित्रा', 'मीकाङ्', 'मीनाम', 'इरावदी', 'कला', और 'आलोक', -शीर्षक कुल १८ अध्यायों में विभक्त है। सर्गों के नामकरण में भी 'कामायनी' की नामकरण-पद्धति का आदर्श अपनाया गया है। कुछ नाम मानस अभिधान हैं, कुछ पौराणिक अभिधानों, एकाध स्थान-परक तथा शेष चरित्र-नामात्मक हैं। प्रबन्धकार का लक्ष्य केवल जो अतीत का उत्खनन और इतिहास वर्णन नहीं है वह अतीत के माध्यम से देश के वर्तमान मन को जगाना और आज की परिस्थितियों में, अतीत के संकेतों से उसे अपने भूगोल और इतिहास में पुनर्जाग्रत करना चाहता है, जहाँ आधुनिक युगीन चिन्तन को एक स्वस्थ मूलाधार प्राप्त हो सकता है। साम्प्रदायिकता, जाति-गत द्वेष-विद्वेष, धार्मिक असहिष्णुता, क्षेत्रीयता आदि दोषों के परिप्रेक्ष्य में एक-राष्ट्रीयता, समता-बन्धुत्व और उदात्त मानवता के लोकापेक्ष मूल्य प्रसंगतः अपने आप रचना धर्मिता में निरुपित होते गये हैं। आत्म-कुण्ठा, हीन-कण्ठा, अनास्था और वैयक्तिक स्वार्थों के संकीर्ण राग-विरागों से अलग होकर, सारे प्रबन्ध में एक सार्वजनीनता, और सर्वभ्रातृत्व की तथा सामूहिक गति-प्रगति के आदर्शों की प्रेरणा से लिखित यह प्रबन्ध सर्व-नावीन्य के प्रचलित उत्कलन से सर्वथा मुक्त और भारतीय आदर्शों के प्रति पूर्ण समर्पण का काव्य है। कथानक इतिहास की रचनात्मक मुद्रिका में, मिथक का एक उज्ज्वल नगीना है, जिसे रचित-खचित करने में प्रणेता ने अपना पूर्ण ध्यान-अवधान समर्पित कर दिया है। उसकी चिन्ता है-

'श्रुति-संस्कृति विकसे कैसे
संसृति के हर कोने में।

हम बनें सहायक कैसे
सबके उन्नत होने में।।' इरावदी-सर्ग

प्रबन्ध में आदि से अन्त तक, एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है। यह वही छन्द है जो 'प्रसाद' की 'आँसू' कृति में साद्यन्त प्रयुक्त हुआ है। इसके समान्तर दो-एक सर्गों के छन्दोविधान 'कामायनी' में भी प्रयुक्त हुए है जो काया-विस्तार में अपेक्षाकृत छोटे हैं। सारे प्रबन्ध में एक ही छन्द की विन्यासना, जहाँ रचनाकार की क्षमता की कसौटी बन गयी है, वहीं अनेकत्र वह उसकी मर्यादा की रेखांकिका भी बन जाती है। यही कारण है कि अनेक स्थलों पर जहाँ तथ्य-कथ्य की वर्णना का आग्रह अपेक्षाकृत कुछ अधिक फैलाव माँगता प्रतीत होता है, भाव-विचारों को अपने पंख भी समेट लेने पड़े हैं। यह छन्द वस्तुतःअन्तर्मुखी भावों और आत्म-निष्ठ अनुभूतियों की समास पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए जहाँ अधिक समर्थ सिद्ध होता है, वहीं वस्तु-वर्णना के धरातल पर उसकी क्लिष्टता भी उजागर होने लगती है। ऐसी छन्दः- काया में, इसीलिए स्यात् महाकवि प्रसाद को भी प्रतीकात्मकता और चित्रात्मक लाक्षणिकता से काम लेना पड़ा है। प्रबन्ध के वे स्थल, जहाँ रचनाकार आत्म-गोपना अथच संकेतात्मकता से भाव व्यंजना करना चाहता है, पद निखर उठे हैं, पर जहाँ वस्तु-विवरण अथवा घटना-प्रक्रम की प्रस्तुति वांछित रही है, वहाँ कथ्य को कष्ट संकुचित होना पड़ा है। यह छन्द स्फुटता के लिए उपयुक्ततर पर प्रबन्धात्मकता के लिए कष्टकर बन जाता है। क्रिया-पदों की पूर्णता और तुकान्तता-दोनों ही अपेक्षाओं में इसे सुविधा-जनक अथवा सहजता-परक छन्द नहीं कहा जा सकता। एक-छान्दसिकता के स्थान पर कृति में यदि सर्गतः छन्दोवैविध्य का प्रयोग किया गया होता तो प्रणेता की भाषिक संरचना और तदनुसार सहजाभिव्यक्ति का श्रम बहुत कुछ कम हो गया होता।

फिर भी, प्रकृति-चित्रण, भाव-चित्रण और वस्तु-कथन की दृष्टि से ही नहीं, उद्देश्य की सिद्धि-प्रवृद्धि के कोण से भी, यह प्रबन्ध एक साधुवाद्य रचनात्मक कृति है, जिसमें रचयिता की प्रतिभा-प्रकल्पना के साथ, बहिर्जगत् के लिए भी प्रचुर उपादेय सामग्री का, भाव और विचार-दोनों ही स्तरों पर, सुन्दर संगुम्फन किया गया है। यह भी शुभतर ही है, कि रचयिता की महत्वाकांक्षा के आयाम, समाजोन्मुखी और लोक-सम्प्रेषक हैं। आज प्रगति, प्रयोग, नयेपन,

विद्रोह, विसंगति-बोध और अजनबीपन के सोपानों को पारकर, हिन्दी कविता को जिस आत्म-रचना और लोक सम्वेदना की दिशा में पुनः उन्मुख हो जाना चाहिए, 'कौण्डिन्य' कृति का कृतिकार बिना किसी आत्म-दम्भ और अहन्ता के उसी दिशा-भूमि पर आगे आना चाहता है। इसमें उसकी क्रमिक सफलता असंदिग्ध है। कृति से यह संकेत मिलता है कि डा० पाण्डेय अपने साधना क्रम में हमें और सुन्दर प्रबन्ध देने में अवश्यमेव सफलतर और समर्थतर सिद्ध होंगे।

श्रीपाल सिंह 'क्षेम'

श्रीपाल सिंह 'क्षेम'

□□

डॉ० जितेन्द्रकुमार तिवारी

उपाचार्य, प्राचीन इतिहास पुरातत्त्व
एवं संस्कृति विभाग-सन्त तुलसी दास
स्नातकोत्तर महाविद्यालय कादीपुर
सुलतानपुर उ०प्र०

डॉ० सुशील कुमार पाण्डेय द्वारा विरचित 'कौण्डिन्य' महाकाव्य को पढ़ने का सुयोग मिला। ऋषि 'कौण्डिन्य' द्वारा भारतीय संस्कृति के विस्तार हेतु जो कष्ट सह गये, उनका अनुभव इस महाकाव्य के अध्ययन से हो जाता है। इतिहास की भूमि पर कल्पना की छाया में, यथार्थ तथा आदर्श का सामञ्जस्य करते हुए डॉ० पाण्डेय ने जिस कवि धर्म का निर्वहन किया है, उसके लिए वे स्तुत्य हैं। डॉ० पाण्डेय का यह महाकाव्य इतिहास के अध्येताओं को ऐतिहासिक सन्दर्भ में 'कौण्डिन्य' पर कार्य हेतु न केवल आकृष्ट करता है, वरन आधार सामग्री भी देता है। ऐतिहासिक दृष्टि से महाकाव्य में आबद्ध 'मीकाङ', 'मीनाम,' इरावदी अतिशय महत्व के हैं। यह आश्चर्य ही नहीं, सोचने की भी बात है कि भारतीय संस्कृति के ऐसे ध्वजवाहक की चर्चा भारतीय पौराणिक ग्रन्थ बहुत कम करते हैं। डॉ० पाण्डेय जी की यह कृति साहित्य और इतिहास दोनों दृष्टियों से कालजयी है।

११.११.२००९ ई. डॉ० जितेन्द्र कुमार तिवारी

□□

डॉ० सर्वदानन्द द्विवेदी

(डी० लिट्० मानद व्याख्याता-व्यावसायिक हिन्दी, चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, सदस्य- केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद, अन्तरर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति कोंकोर्डिया मांट्रियाल, दक्षिण भारत हिन्दी समिति आदि, पूर्व हिन्दी अधिकारी सीमा शुल्क सदन कलकत्ता, पूर्व उपनिदेशक राजभाषा, केन्द्रीय उत्पाद एवं सीमाशुल्क मेरठ,)

कौण्डिन्य एक कालजयी रचना है। प्रस्तुत रचना में कल्पना व इतिहास का विलक्षण समन्वय है। नानापुराण निगमागम--- की भाँति रचयिता ने वेद, पुराण, श्रुति, ऋचाओं गीता, महाभारत आदि के सार को भारतीय संस्कृति, धर्म, वैदुष्य, चरित्र, पराक्रम व मानव मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में ऊर्ध्वमूल आध्यात्म तत्व के परिशीलनार्थ काव्येतिहास के माध्यम से कथा सूत्रों को अपनी शैली में व्यापक वितान विस्तारित करके हिन्दी साहित्य की विस्मृत हो रही शैली पर अत्याधुनिक वज्राघातों से रक्षा कवच प्रस्तुत कर दिया है।

मैं तट पर बैठा देख रहा नौकायन प्राची का मादक।

कम्बोज विजेता शासक सा मैं भी हूँ सागर का साधक।।

१०-६-१९८६

(डॉ० सर्वदानन्द द्विवेदी)

□□

पद्मश्री मुकुटधर पाण्डेय

(डी० लिट्० छायावाद शब्द के प्रथम प्रयोक्ता, छायावाद के प्रवर्तक, सरस्वती के 'फ़्री लिस्ट' लेखक, पूर्व दण्डाधिकारी (मैजिस्ट्रेट) रायगढ़ राज्य, साहित्य वाचस्पति)

कौण्डिन्य हिन्दी संसार में कदाचित् नया नाम है। पुराणों के अनुसार कुंडिनपुर विदर्भ की राजधानी थी। शोध के विद्वानों का अनुमान है कौण्डिन्य कदाचित् कुंडिनपुर निवासी दाक्षिणात्य ब्राह्मण था जिसने ईसा की प्रथम शताब्दी में वृहतर भारत में भारतीय उपनिवेश के रूप में कम्बोज देश की स्थापना की। आजकल का कम्बोडिया ही वह कम्बोज है।

कौण्डिन्य वृहत्तर भारत में भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रचारक था। कवि ने इस काव्य ग्रन्थ में उसी का चरित्र-चित्रण किया है। हिन्दी में प्रबन्धात्मक काव्य की परम्परा में उनका यह प्रयास प्रशंसनीय है। प्रागैतिहासिक या पौराणिक विषयों की एक सरस सुन्दर रूप में आधुनिक सन्दर्भ में प्रस्तुति सर्वथा अभिनन्दनीय है। कवि ने अपने काव्य में विश्वबन्धुत्व का आदर्श उपस्थित किया है। मैं आशा करता हूँ , हिन्दी जगत में उसका स्वागत होगा।

रायगढ़ मुकुटधर पाण्डेय

७-५-८५ (मुकुटधर पाण्डेय)

□□

पद्मभूषण डॉ० रामकुमार वर्मा

(पूर्व प्रोफेसर, मास्को विश्वविद्यालय, पूर्व प्रोफेसर पैरेदेनिया विश्वविद्यालय श्री लंका, निदेशक विश्व नेतृत्व हेतु भारतीय संस्थान, देव पुरस्कार, भारत-भारती आदि पुरस्कार प्राप्त, पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

भारतवर्ष अपने आदिकाल से ही मानवता की सेवा में समर्पित रहा है। यहाँ के मनीषियों ने अपने तपोबल से वैदिक ज्ञान के दार्शनिक और व्यावहारिक सिद्धान्त को न केवल अपने देश की सीमाओं में ही, वरन् सुदूर देशों में भी जाकर सत्य की व्याख्या हेतु सम्प्रेषित किया है। कौण्डिन्य भी ऐसे ही एक प्रतिभा सम्पन्न मनीषी थे। वे जीवन-पर्यन्त सत्यं, शिवं, सुन्दरम् के निरूपण में संलग्न रहे। कौण्डिन्य का कार्य क्षेत्र मुख्य रूप से वृहद् भारत में रहा, इस कारण बहुत ही अल्प जानकारी उनके बारे में यहां के लोगों को मिली। इस अभाव को पूरा करने में डॉ सुशील कुमार पाण्डेय की कृति कौण्डिन्य बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध होगी। महा-महिम कौण्डिन्य का जीवन-चरित्र जो कि अनुपलब्ध रहा है, उसे उपलब्ध कराकर श्री पाण्डेय जी ने एक मौलिक कार्य तो किया ही है, साथ ही अन्य लोगों के लिए पृष्ठभूमि भी तैयार कर दी है।

कौण्डिन्य की रचना जहाँ एक ओर भारतीय सांस्कृतिक साहित्य की परिचायिका है, वहीं एक मौलिक खोज भी है। इसके लिए प्रतिभा सम्पन्न युवा कवि श्री पाण्डेय जी वास्तव में साधुवाद के पात्र हैं।
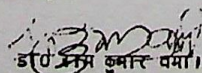
मैं उनकी उत्तरोत्तर सफलता की हृदय से कामना करता हूँ।

साकेत, ४ प्रयाग स्ट्रीट
इलाहाबाद २११००२
२५-१-८५

भवदीय
डॉ० राम कुमार वर्मा
(डॉ० राम कुमार वर्मा)

वियोगी हरि

(मङ्गला प्रसाद पुरस्कार प्राप्त, साहित्य वारिधि, साहित्य वाचस्पति, हिन्दी संस्थान उत्तर प्रदेश का वरेण्य पुरस्कार, कराँची हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष आदि।)

मेरे सामने एक उत्तम काव्य कृति है, जिसका नाम है 'कौण्डिन्य'। इसके रचनाकार हैं डॉ० सुशील कुमार पाण्डेय। पाण्डेय जी की 'प्रतीक्षा' नामक रचना पर मैंने अपनी सम्मति दी थी, और तबसे बराबर प्रतीक्षा करता रहा कि इस काव्य के बाद और भी अच्छी रचना हिन्दी जगत् के सामने आयेगी। प्रतीक्षा सफल हुई 'कौण्डिन्य' काव्य कृति देखकर। मैं इसका हार्दिक स्वांगत करता हूँ।

साहित्य जगत् के उत्कृष्ट लेखक श्री कुबेरनाथ राय के अनूठे सुझाव से ''कौण्डिन्य' की रचना हुई है। जहाँ तक मैं जानता हँ इसके पूर्व 'कौण्डिन्य' पर कोई काव्य नहीं लिखा गया। श्री कुबेरनाथ राय ने सुझाव देते हुए लिखा है कि 'कौण्डिन्य' भारतीय कोलम्बस था। कम्पूचिया और चीन के पुराणों के अनुसार उसने कम्पूचिया का आविष्कार तथा भारतीयता का बीजारोपण किया था, और इसी ने वहाँ की रानी से प्रणय करके सूर्यवंश की नींव डाली थी।'' प्रस्तावना में 'पाण्डेय' जी ने इसकी ऐतिहासिकता पर कई विद्वानों के प्रमाण दिये हैं। वे हैं फ्योदोर कोरोव्किन, डॉ० राजबली पाण्डेय, डॉ० रमेश चन्द्र मजूमदार, श्री चन्द्रगुप्त वेदालंकार, श्री बिजेनराय चटर्जी आदि।

'कौण्डिन्य' यह नाम भारत के लिये अपरिचित नहीं रहा है। किन्तु यह यथोचित प्रकाश में नहीं आया। वृहत्तर भारत में सांस्कृतिक सन्देश देने वाला यह पृष्ठ हमारे साहित्य में धुंधला रहा है।

'कौण्डिन्य' पर यह सुंदर काव्य लिखकर 'पाण्डेय' जी ने वस्तुतः सराहनीय कार्य किया है। पढ़ते हुए कहीं-कहीं पर ऐसा लगता है कि कौण्डिन्य

एवं कम्पूचिया की रानी सोमा का प्रणय: सूत्र में बँध जाना इस काव्य का एक सुनहरा सूत्र है। लगता है कि कवि महीने पर्दे में से झाँक रहा है 'प्रसाद' को, और उस अमर कवि का आशीर्वाद कवि को अनमॉगे ही मिल रहा है।

कौण्डिन्य अठारह सर्गों में विभक्त है। इसमें से नालन्दा, अश्वत्थामा, वैनतेय, विष्णु, चित्रा, कला और आलोक ये बड़े मनोरम बन पड़े हैं। कवि की प्रतिभा चकित और रसाप्लावित कर देगी पाठकों को इसमें सन्देह नहीं ।

कौण्डिन्य दृष्टिपात करा रहा है भारतीय संस्कृति के उन भूले हुए पृष्ठो पर, जिनमें अंकित किया गया था सात्विकता को, सदाचार को और वीरत्व एवं विशुद्ध प्रणय को। मैं चाहता हूँ कि इस पुस्तक का साहित्य जगत् में यथेष्ट समादर हो।

१४-०९-१९८४

एफ १३/२ माडल टाउन (वियोगी हरि)

दिल्ली-२

□□
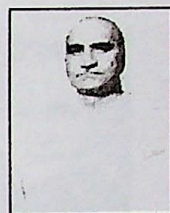
डॉ० भगीरथ मिश्र

(पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग पूना विश्वविद्यालय, सागर विश्वविद्यालय, पूर्व अभ्यागत आचार्य ओरियंटल रिसर्च' इन्स्टीट्यूट मास्को, उस्मानिया विश्वविद्यालय पूर्व कुलपति सागर विश्वविद्यालय, साहित्य वाचस्पति, साहित्य, वारिधि विद्यासागर, भाषा साहित्य भूषण, साहित्य भूषण आदि सम्मान प्राप्त)

डॉ० सुशील कुमार पाण्डेय-द्वारा रचित 'कौण्डिन्य' नामक प्रबन्धकाव्य को मैंने आद्योपान्त पढ़ा। इस काव्य की विषय-वस्तु अत्यन्त महत्व की है। कौण्डिन्य का जीवन एक साहसिक महामानव का जीवन है जिसने गुरु के आदेश से महारण्य और महोदधि की यात्रा की। उसके जीवन में अश्वत्थामा का मार्ग दर्शन और उसकी दी हुई वस्तुएँ कौण्डिन्य की भयावह और संकट पूर्ण यात्रा में संबल का काम करती रहीं। आपत्तियों को झेलता हुआ वह अन्ततोगत्वा अपने गन्तव्य पर पहुँच ही गया। पर इस साहस पूर्ण यात्रा से बढ़कर उसका कार्य उन पूर्वी द्वीपवासियों को सभ्य बनाने का है। उनमें भारतीय-संस्कृति के बीजारोपण कर उनसे स्थायी सम्बन्ध स्थापित कर कौण्डिन्य ने भारतीय संस्कृति के प्रसार का महत्वपूर्ण कार्य किया। इस प्रकार के कार्य के लिए प्रायः लोग महर्षि अगस्त्य को स्मरण करते हैं पर इस काव्य-द्वारा कौण्डिन्य को भी इस प्रकार के महत्वपूर्ण कार्य करने का श्रेय प्राप्त होता है। कौण्डिन्य का चरित्र साहसी, प्रेमी, ध्येयनिष्ठ भारतीय संस्कृति के प्रचारक का चरित्र है। सौन्दर्य-प्रेमी होने पर भी उसमें एक नैतिकता है।

प्रस्तुत काव्य में इसी कथानक का ताना बाना है। कथानक और चरित्र तो इसमें क्षीण और छायात्मक ही हैं, पर प्रकृति-चित्रण, सौन्दर्य-वर्णन एवं भाव विश्लेषण विशद और विस्तृत है।

(डॉ० भगीरथ मिश्र)

एच-९ पद्माकरनगर
मकरोनिया कैम्प
सागर ४७०००४ (म०प्र०)

पद्मभूषण डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन'

डी०लिट्० (पूर्व कुलपति विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन, उपाध्यक्ष उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, विदेशों में हिन्दी, प्रचारक, देवपुरस्कार, सोवियत लैन्ड नेहरू पुरुस्कार, भारत भारती आदि सम्मान प्राप्त)

पौराणिक विषयों को आधुनिक सन्दर्भ में प्रस्तुत करने का यह प्रयास निश्चय ही सराहनीय है। आशा है, भाषा के मार्दव और सहज अभिव्यक्ति से युक्त 'कौण्डिन्य' काव्य द्वारा इस युग के प्रबन्धात्मक काव्यों की परम्परा में समुचित योगदान सुलभ हो सकेगा।

१५-१२-१९८४

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान (शिवमंगल सिंह 'सुमन')

लखनऊ

□□

पद्म श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'

(हिन्दी अकादमी दिल्ली द्वारा सम्मानित, उपराष्ट्रपति डॉ० जाकिर हुसेन द्वारा सम्मानित, दिवंगत हिन्दी सेवी (२खण्ड) सहित अनेक महत्वपूर्ण कृतियों के प्रणेता)

डॉ० सुशील कुमार पाण्डेय द्वारा विरचित कौण्डिन्य नामक काव्य को पढ़कर असीम आनन्द की अनुभूति हुई। इसमें कवि ने भारतीय कोलम्बस 'कौण्डिन्य' के चरित्र को आधार बनाकर भारतीय संस्कृति के जिन पक्षों पर प्रकाश डाला है वह हमारे अतीत कालीन गौरव के दृढतम स्तम्भ हैं। इस काव्य के माध्यम से श्री 'पाण्डेय' ने जहाँ भारतीय संस्कृति की सार्वभौम महत्ता के विस्तार पर व्यापक रूप से विचार किया है वहाँ दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों के साथ भारत के गौरव पूर्ण सम्बन्धों का उल्लेख भी किया गया है।

प्राचीन भारतीय इतिहास के जिस विलुप्त अध्याय का चित्रण श्री 'पाण्डेय' ने अपने इस काव्य के कथानक द्वारा किया है, वह हमारी सांस्कृतिक धरोहर का सबल मेरुदण्ड है। यथा प्रसंग इस काव्य के निर्माण में कवि ने भारतीय इतिहास के उन विद्वानों के निष्कर्षों से भी पूर्णतः लाभ उठाया है जिनकी शोध कृतियाँ हमारे इतिहास को आलोकित करने में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। भारतीय संस्कृति की 'सर्वे भवन्तु सुखिनः और 'न त्वहं कामये राज्यं' की सफल साधना का जो प्रतिरूप इस काव्य के विभिन्न वर्णनों के माध्यम से हमारे सामने स्पष्ट होता है वह हमारी उदारचरिता नां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ' से आप्लावित भावना का ही ज्वलन्त उदाहरण है। कवि ने अपने इस काव्य के कथानक को विभिन्न सांस्कृतिक पात्रों के उदात्त चरित्रों द्वारा जिस प्रकार सुगुम्फित और परिपुष्ट किया है उससे उसके गहन अध्ययन और चिन्तन का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है।

इस काव्य की विशिष्टता के ज्वलन्त साक्ष्य इसके 'अध्ययन', 'स्वाती', 'पथ', 'नालन्दा', 'अश्वत्थामा', 'शाप', 'आदेश', 'पत्तन', 'महोदधि', 'वैनतेय',

'विष्णु', 'पर्व', 'मीकांङ', 'मीनाम', 'इरावदी', 'कला', और 'आलोक', आदि सर्गों के नाम ही है, जिनके अन्तर्गत कवि ने अपने अभीष्ट कथ्य का ताना-बाना बुना है। भाषा, भाव, छन्द-विधान और कथानक की परिपुष्टता आदि सभी दृष्टि से श्री पाण्डेय का यह काव्य हिन्दी वाङ्मय में एक वैचारिक अभिवृद्धि का सशक्त संकेत देता है। मैं इस शोध पूर्ण कृति का स्वागत करते हुए कवि के उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ।

२०-११-१९८४ ई.

अजय निवास दिलशाद कालोनी

(पुरानी सीमापुरी के निकट) (क्षेमचन्द्र 'सुमन')

शाहदरा दिल्ली-३२

□□

डॉ० मुंशीराम शर्मा 'सोम'

डी०लिट्० (पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष डी०ए०वी०कालेज कानपुर, डालमिया, साहित्य वारिधि, साहित्य वाचस्पति आदि सम्मान प्राप्त)

कौण्डिन्य की पाण्डुलिपि पूरी पढ़ गया। कवि के सत्प्रयास को भूरि-भूरि साधुवाद। आर्य संस्कृति का मार्मिक एवं हृदयग्राही चित्र इसमें कवि ने अंकित किया है। अगस्त्य के साथ कौण्डिन्य का नाम भी इस संस्कृति के विस्तार में चिरस्मरणीय रहेगा। भिक्षु सम्प्रदाय भी बौद्ध धर्म को लेकर इसी संस्कृति का प्रसारक सिद्ध हुआ था। कवि ने इस काव्य द्वारा बीती बात का पुनरुद्धार किया है- वह सर्वथा संस्तुत्य है। ।

कौण्डिन्य प्राचीन शब्द है। वह शिव से भी सम्बद्ध है। कुण्डिन शिव की उपाधि है। शिव भक्त भी कुण्डिन या कुण्डिहा कहलाते हैं। कौण्डिन्य गोत्र भी है। ईसवी प्रथम शती का कौण्डिन्य शतपथ या बृहदारण्यक का कौण्डिन्य नहीं हो सकता। विदर्भ देश की राजधानी कुण्डिन का निवासी वह दक्षिणात्य ब्राह्मण जान पड़ता है। कवि ने अपने काव्य द्वारा उसे अधिक यशस्वी बना दिया।

प्रशस्तिः

जन्मजन्मान्तराज्जातः कुलीनः कोविदः कविः।
नाम्ना सुशील पाण्डेयःमेधावी महिमान्वितः।।१।।
धर्मसूत्रं समाधाय वाचस्पतिः बभूव यः।
तस्य काव्ये रुचिं दृष्ट्वा कविः तृप्तो दिवौकसि।।२।।
कौण्डिन्येऽपि सुशीलेन आर्याणां शील माहितम् ।
भारती पद्धतिः व्यक्ता विश्वस्यानन्दकारिणी।।३।।

सांकृताय कुमाराय पाण्डेयस्पद शोभिने।
ब्रह्मा ददातु दीर्घायुः कीर्तिं वित्तं चसात्विकम् ।।४।।
चतुरशीतिवर्षस्थो मनीषी राम इत्वरः।
सोमोपाङ्क सुशीलाय भूति मिच्छति वारुणीम् ।।५।।

मुंशीराम शर्मा 'सोम'

(मुंशीराम शर्मा 'सोम')

९/७० आर्य नगर
कानपुर
४-१-१९८५

□□
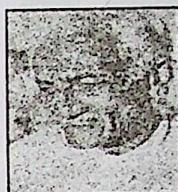
डॉ० विनयमोहन शर्मा

(पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष नागपुर विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, पूर्व शोध निर्देशक भोपाल विश्वविद्यालय, पूर्व निदेशक केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा, पूर्व अध्यक्ष, भारतीय हिन्दी परिषद, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ से विशेष सम्मान प्राप्त आदि)

प्रबन्ध काव्य 'कौण्डिन्य' में कवि-प्रतिभा का प्रकाश उज्जवल है। नई सूझ, नया आख्यान सभी तो 'नया' लगता है। कवि ने 'प्रसाद' के ऑसू छन्द को आत्मसात कर लिया है। कहीं-कहीं प्रवाह खण्डित-सा लगता है, यों पढ़ने में आनन्द ही आता है। प्रकृति-चित्रण में कवि का मन खूब रमा है। यह काव्य काव्य प्रेमियों को आह्लादित करेगा।

डॉ० विनय मोहन शर्मा

२१-०९-१९८४

ई०६/एम.आई.जी-७

अरेरा कालोनी भोपाल-१६

□□

कुबेरनाथ राय

(पूर्व प्रवक्ता अंग्रेजी नलबरी कालेज नलबरी, असम, पूर्व प्राचार्य स्वामी सहजानन्द सरस्वती महाविद्यालय गाजीपुर, मूर्तिदेवी, रामचन्द्र शुक्ल, महावीर प्रसाद द्विवेदी पुरस्कार प्राप्त, भारतीय भाषा परिषद, तथा मानस संगम कानपुर आदि से सम्मान प्राप्त)

विषय के महत्व को देखते हुए कौण्डिन्य आवश्यक एवं महत्वपूर्ण कार्य रहा है अब तक शायद इस विषय पर किसी कवि ने लेखनी नहीं चलाई है इतने बड़े फलक पर। यही कम महत्वपूर्ण बात नहीं।

शैली की दृष्टि से इसमें मैं कुछ भी नयापन नहीं देखता जो 'प्रतीक्षा' से भिन्न हो। अवश्य विषय का बल इस कृति में कई गुना अधिक है। काव्य में मैं विषय को ही प्राथमिकता देता हूँ। सही विषय किसी भी शैली में आनन्द देता ही है। कविता प्रसाद जी और पं० रामनरेश त्रिपाठी का संयुक्त उत्तराधिकार प्रस्तुत करती है।

१७-०८-१९८४

नलबरी, असम

(कुबेरनाथ राय)

□□

आचार्य पं० सीताराम चतुर्वेदी

(पूर्व आचार्य काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

पूर्व आचार्य भारतीय विद्याभवन बम्बई,

महामना मदन मोहन मालवीय के निर्देश पर कालिदास ग्रन्थावली के हिन्दी रूपान्तरकार, महात्मा गाँधी के आदेश पर हिन्दी प्रचारक)

परिचय

बहुत से ऐसे वीर संकल्पशील, तेजस्वी, मनस्वी, साहसी महापुरुष हो गये हैं जिन्होंने कर्तव्य निष्ठा के साथ लोक-कल्याण का पावन संकल्प लेकर सुदूरवर्ती क्षेत्रों में जाकर अपनी वीरता और ज्ञान-विज्ञान का प्रसार कर के भारतीय विद्या और संस्कार का प्रचार और प्रसार किया परन्तु इतिहास उनके विषय में मौन रह गया हैं इसके अनेक कारण हो सकते हैं। एक कारण यह भी हो सकता है कि उनके सत्प्रयास के विषय में कोई व्यवस्थित क्रमबद्ध सामग्री प्राप्त न होकर छिटपुट ग्रन्थों में ही कहीं कहीं प्रसंगवश थोड़ा थोड़ा उल्लेख मात्र ही प्राप्त होता हो। दूसरा कारण यह भी है कि उन्होंने दूर देशों में जाकर अपनी सभ्यता, संस्कृति और विद्या का मंत्र फूँका जो उस देश के लोगों के लिए हितकारी और लाभकारी सिद्ध हुआ अतः वहाँ के इतिहास कारों का कर्तव्य था कि उनका इतिवृत्त क्रमिक रूप में लिपिबद्ध कर दें, परन्तु उन्होंने ऐसे मनीषियों को विदेशी जानकर अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा की।

कौण्डिन्य भी एक ऐसे ही महापुरुष थे जो अनेक बाधाओं, कष्टों आदि को अपने दृढ संकल्प, प्रबल इच्छाशक्ति तथा प्रचण्ड बाहुबल से परास्त करते हुए कम्बोडिया पहुँचे और वहाँ सनातन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का सम्यक् विस्तार किया। कम्बोडिया के इतिहासकारों का यह दायित्व था कि उनके पराक्रम की यशोगाथा को व्यवस्थित करके लेखबद्ध कर दें क्योंकि उन्होंने जो वहाँ पहुंचकर अपना संस्कार वहाँ के लोगों पर डाला उसका वहाँ के लोगों के लिए ही सर्वाधिक महत्त्व है। परन्तु वहाँ के इतिहासकार इसमें चूक कर गये और यही कारण है कि महानायक कौण्डिन्य की गाथा व्यवस्थित रूप में कम्बोडिया के सम्पूर्ण साहित्य में प्राप्य नहीं है और भारतीय वाङ्मय में तो

उनके कम्बोडिया के पराक्रम की गाथा का कोई सुव्यवस्थित रूप मिल पा सकना असम्भव ही था।

यह अत्यन्त श्रेय की बात है कि श्री सुशील कुमार पाण्डेय ने इतिहास के भूले बिसरे पृष्ठों की धूल को झाड़ पोंछकर उनमें छिपे हुए महानायक कौण्डिन्य की अमर गाथा को अपनी कल्पना-शक्ति से सजा-सँवारकर उनकी महिमा का यशोगान करने के पावन उद्देश्य से एक महाकाव्य ही लिख डाला जो रोचक होने के साथ साथ पठनीय, रुचिर और मन भावन भी है। ग्रन्थ की भूमिका में ही श्री पाण्डेय ने कौण्डिन्य पर प्राप्त समस्त सामग्री की विशद विवेचना भी प्रस्तुत कर दी है जो उनकी शोधवृत्ति की परिचायक तो है ही, साथ ही कौण्डिन्य की कथा को एक ऐसा सबल ऐतिहासिक आधार भी सहज ही प्रदान कर देती है जिसमें श्री पाण्डेय की निराली कल्पना शक्ति का अद्भुत संयोग इस महाकाव्य को शोधशील और प्रशस्त बना देता है।

कौण्डिन्य समस्त भारत का अत्यन्त तेजस्वी प्रतिनिधि है जिसने कम्बोडिया जैसे सुदूरस्थ देशों में जाकर भारतीय संस्कृति की ध्वजा फहरायी। यह बात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि कम्बोडिया की रानी सोमा के उदारतापूर्ण आचरण से कौण्डिन्य को बड़ी सहायता मिली और उनका कार्य बड़ी कुशलता और शान्ति के साथ सम्पन्न हो गया।

'महानायक कौण्डिन्य' श्री सुशील कुमार पाण्डेय की अठारह सर्गों में निबद्ध एक सिद्ध रचना है। यह सारा महाकाव्य ही पठनीय है। बीच-बीच में उसमें कल्पना के सुखद संयोग से रस भी आ गया है। काव्य सौष्ठव की समस्त कलाओं का रस सिद्ध समायोजन करके विद्वान कवि ने इस महाकाव्य को अधिक से अधिक सुन्दर और श्रेयस्कर बनाने का सफल प्रयत्न किया है जिसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं।

मुझे आशा है कि 'महानायक कौण्डिन्य' महानायक कौण्डिन्य के सम्बन्ध में शोध करने वाले व्यापक स्तर पर शोधार्थियों को सत्प्रेरणा प्रदान करेगा और जिस महापुरुष ने भारतीय संस्कृति, सभ्यता, ज्ञान, विज्ञान और कौशल से कम्बोडिया जैसे सुदूरस्थ देशों में भी 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का पाञ्चजन्य फूँक दिया था उसके विषय में प्रामाणिक इतिहास लेखन का श्री गणेश करने की प्रेरणा भी देगा। यदि एक भी व्यक्ति ने इस महाकाव्य में 'इतिहास भूमि पर कल्पना की छाया में देखे गये महानायक कौण्डिय के प्रामाणिक जीवन-वृत्त

को संकलित करने का कौण्डिन्य संकल्प ले लिया तो इस महाकाव्य की रचना सार्थक हो जायेगी और गौरव शाली अतीत का स्वामी यह जम्बू द्वीप भी कृतघ्न होने के लांछन से मुक्त हो सकेगा।

मुझे विश्वास है कि श्री सुशील कुमार पाण्डेय की इस कृति का विद्वत्समाज में समुचित समादर होगा।

सीताराम चतुर्वेदी

(सीता राम चतुर्वेदी)
वेदपाठी भवन
पञ्चमुखी महादेव मार्ग
मुजफ्फरनगर-२५१००२
२७/१२/२००२

□□

डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार

(डी०लिट्० पेरिस, गोविन्द वल्लभ पुरस्कार, मोती लाल नेहरु पुरस्कार, मंगला प्रसाद पारितोषिक द्वारा सम्मानित, पूर्व कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार, पूर्व प्रोफेसर इतिहास।)

प्राचीन समय में भारत का सांस्कृतिक साम्राज्य अत्यन्त विशाल था। मध्य एशिया तथा सुदूर पूर्व (चीन, जापान, और कोरिया) के समान दक्षिण-पूवी एशिया के विविध देश (इन्डोनेसिया, मलयीसिया, लाओस, वियतनाम और कम्बोडिया) भी भारत के इस सांस्कृतिक साम्राज्य के अन्तर्गत थे। समुद्र के क्षेत्र में विद्यमान इन देशों को एक प्रकार से भारत का भेद ही माना जाता था। इसीलिये दक्षिण-पूर्वी एशिया के इन द्वीपों या देशों को पौराणिक साहित्य में भारत के भेद एवं भाग कहा गया है-

भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान् निबोध मे।
समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्या परस्परम् ।।

भारत के ये नौ भेद एवं भाग समुद्र के क्षेत्र में स्थित थे, और इनमें आना जाना कठिन था। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि, पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी एशिया के विविध देश भाषा, धर्म, शासन-व्यवस्था, कला, संस्कृति आदि की दृष्टि से हजारों वर्षों तक भारत के अंग रहे, और अब तक भी भारत का उन पर प्रभाव स्पष्ट रूप से विद्यमान है। यह सही है, कि इस वृहत्तर भारत के सम्बन्ध में अभी तक हिन्दी में बहुत कम पुस्तकें उपलब्ध हैं। हिन्दी में ही नहीं, अपितु अंग्रेजी में भी इतिहास के इस अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय पर पुस्तकों का अभाव है। इसका कारण यह है, कि इन्डोनीसिया पर पहले हालैण्ड का शासन था, और ईन्डो-चायना (विएतनाम, कम्बोडिया और लाओस) पर फ्रांस का। इस क्षेत्र में ऐतिहासिक व पुरातत्त्व-सम्बन्धी खोज डच और फ्रेंच विद्वानों द्वारा की गयी, जैसे कि भारत के प्राचीन इतिहास की खोज के लिये अंग्रेजों द्वारा

महत्त्वूपर्ण कार्य किया गया था। इसीलिये वृहत्तर भारत के सम्बंध जो भी मौलिक साहित्य विद्यमान है, वह डच तथा फ्रेंच भाषाओं में है। भारत में क्योंकि अंग्रेजी ही सब ज्ञान-विज्ञान का स्रोत समझी जाती है, अतः भारतीयों को दक्षिण-पूर्वी एशिया में अपनी सभ्यता एवं सांस्कृतिक पक्ष के सम्बंध में समुचित परिचय प्राप्त नहीं हो सका है। संभवतः इसीलिये 'कौण्डिन्य' महाकाव्य के रचयिता श्री सुशील कुमार पाण्डेय ने अपने काव्य के नायक कौण्डिन्य को 'भारतीय कोलम्बस' की संज्ञा दी है। कौण्डिन्य को कोलम्बस कहना हीनोपमा है-इससे महानायक की गरिमा घटती है, बढ़ती नहीं। कोलम्बस को जिस महाद्वीप का अकस्मात् ही पता लग गया था, यूरोप के लोगों ने वहाँ की मय, एजटेक आदि प्राचीन सभ्यताओं को नष्ट कर दिया। पर कौण्डिन्य ने जिन द्वीपों एवं भूमिखण्डों में भारतीय उपनिवेशों का सूत्रपात किया, उनके प्राचीन निवासियों को नष्ट न कर उनके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये, और उन्हें अपने सांस्कृतिक रंग में रंग दिया। कौण्डिन्य ने इन प्रदेशों का पता नहीं लगाया था। ये पहले भी भारतीयों को ज्ञात थे, और भारतीय व्यापारी वहां जा-आकर अपार धन कमाया करते थे। इन साहसी भारतीय सामुद्रिकों एवं व्यापारियों की बहुत सी कथायें प्राचीन संस्कृत और प्राकृत साहित्य में विद्यमान है। कौण्डिन्य ने इन प्रदेशों में जाकर भारतीय उपनिवेश बसाने प्रारंभ किये। और वहाँ के मूल निवासियों को अपनी उच्च सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभावित किया। श्री पाण्डेय का यह कथन सर्वथा सही है, कि कौण्डिन्य "भारतीय संस्कृति की सार्वभौम विस्तार यात्रा" का प्रतीक है। फूनान में कौण्डिन्य के नेतृत्व में भारतीय उपनिवशों की स्थापना का परिज्ञान चीनी अनुश्रुति से होता है, और कम्बोडिया में वहाँ के उत्कीर्ण लेखों से। इसी प्रकार बोर्नियो (इन्डोनीसिया) द्वीप के एक अभिलेख द्वारा सूचित होता है, कि वहाँ कुण्डुना नामक व्यक्ति के नेतृत्व में भारतीय उपनिवेश का सूत्रपात हुआ था। कुण्डुना को कौण्डिन्य से मिलाना असंगत नहीं है। पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी एशिया में भारत के सांस्कृतिक विस्तार के सम्बंध में जो जानकारी अभी तक प्राप्त है, उसके अनुसार यह असंदिग्ध है, कि इस क्षेत्र में भारतीय उपनिवेशों का श्री गणेश कौण्डिन्य द्वारा किया गया था, और भारतीय धर्म तथा संस्कृति के प्रसार में महर्षि अगस्त्य का योगदान बहुत महत्व का था। यही कारण है; कि जावा और बाली के हिन्दू अगस्त्य को अपना आदि गुरु मानते है, और उनके अनेक स्मारक भी वहाँ विद्यमान हैं। वस्तुतः

अगस्त्य तथा कौण्डिन्य ही वे महापुरुष थे, जिनके द्वारा अत्यन्त प्राचीन काल में देश-देशान्तर तथा द्वीप-द्वीपान्तर में भारतीय सभ्यता, धर्म एवं संस्कृति का प्रसार किया गया। ये महापुरुष हमारे लिये प्रातः स्मरणीय हैं, और इनके कृतित्त्व की कल्पना कर हमारा मस्तक स्वतः ही उनके चरणों में झुक जाता है।

यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है कि श्री सुशील कुमार पाण्डेय ने कौण्डिन्य के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को इस महाकाव्य द्वारा उजागर करने का सफल प्रयत्न किया है। उनके महाकाव्य को मैं आद्यन्त पढ़ गया हूँ-और उसे मैंने 'रसात्मक' पाया है। इस रचना के लिये बधाई देते हुए मैं पाण्डेय जी यह आशा करता हूँ, कि वे महर्षि अगस्त्य पर भी इसी ढंग से एक महाकाव्य की रचना कर उनके नाम को भी अमर कर देंगे।

४-५-१९८५

(डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार)
ए-१/३२ सफदरगंज एन्क्लेव नई दिल्ली-२९

□□

डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह

डी०लिट्० निवृत्त आचार्य

एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,

गोरखपुर विश्वविद्यालय,
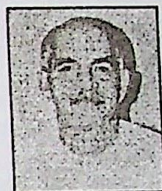
पराड़कर नामित पुरस्कार प्राप्त-

डॉ० सुशील कुमार पाण्डेय की नवीन कृति 'कौण्डिन्य' पढ़ कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। पौराणिक इतिहास में दबी हुई एक अदम्य साहसी पृथ्वीपुत्र की धुंधली जीवन रेखाओं को अपनी काव्य प्रतिभा से आकर्षक तथा उद्बोधक स्वरूप प्रदान कर डॉ० पाण्डेय ने नई पीढ़ी के कवियों के समक्ष एक अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया है। व्यापक परिप्रेक्ष्य में यह रचना आर्यसभ्यता की शान्तिपूर्ण विकास यात्रा तथा विश्वबन्धुत्व स्थापना की एक सरस गाथा के रूप में भी अभिनन्दनीय है।

१३-०६-१९८४

(डॉ० भगवती प्रसाद सिंह)

साकेत बेतिया हाता

गोरखपुर

□□

श्रीश्यामनारायण पाण्डेय
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ
से विशेष सम्मान प्राप्त)

द्रुमग्राम, पत्रालय-डुमरांव
जनपद-आजमगढ़ (उ०प्र०)
दिनांक २५/१/८५

डॉ० सुशील कुमार पाण्डेय ने अपनी अध्ययनशीलता के बल पर अनेक प्राचीन अर्वाचीन पुस्तकों के पृष्ठों में छिपे हुए एक अद्वितीय कर्मशील महापुरुष कौण्डिन्य को खोज निकाला और समाज के सामने छन्दों के अलंकरण से सजाकर रखा। कौण्डिन्य अनेक घाटियों पर्वतों और अगम सरिताओं को पार करते हुए कहीं से दक्षिण भारत में आये और किस तरह शून्य से एक नवीन राष्ट्र को जन्म दिया यह आश्चर्य ही है। लेकिन आश्चर्य क्यों? महामानव दूसरों के उपकार में अपना जीवन खपा देते हैं, उनका जन्म नहीं अवतार होता है। कौण्डिन्य भारतीय संस्कृति सभ्यता और धर्म के पोषक और प्रचारक थे। कौण्डिन्य डाक्टर साहब की पुस्तक के धीरोदत्त नायक हैं। वीर भद्र के समान जैसे वे नायक हैं वैही ही करीब-करीब कविता भी उतरी है। कविवर डाक्टर साहब की कविता किसी वाद की अपेक्षा नहीं रखती। उनकी रचना की प्रशंसा बड़े-बड़े साहित्यकार कर चुके हैं, उनके हस्ताक्षर में मैं भी अपना हस्ताक्षर मिला रहा हूँ। वरिष्ठ कवियों के बीच से डा० सुशील कुमार पाण्डेय उभरते चले जा रहे हैं। हिन्दी काव्य क्षेत्र में अपना अनूठा स्थान बना रहे हैं। अच्छी कविता छिपायी नहीं जा सकती वह शत्रु को भी प्रभावित करती है। मैं कौण्डिन्य काव्य की पूरी सफलता चाहता हूँ।

श्री श्यामनारायण पाण्डेय

(श्रीश्यामनारायण पाण्डेय)

□□

पद्मभूषण डॉ०विद्यानिवास मिश्र
(पूर्व कुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत
विश्वविद्यालय वाराणसी पूर्व अतिथि
आचार्य कैलीफोर्निया, वाशिंगटन
विश्वविद्यालय, मूर्तिदेवी, शङ्कर,
विश्वभारती तथा भारत भारती
आदि सम्मान प्राप्त)

एम-३बादशाह बाग
कालोनी मलदहिया
वाराणसी २२१००२,
०५४२-३५६३०९

श्री सुशील कुमार पाण्डेय ने एक अछूते ऐतिहासिक विषय पर प्रेरणाप्रद काव्य लिखा है **कौण्डिन्य**। यह एक कल्पनाशील सैलानी ब्राह्मण की समुद्र यात्रा की कहानी है, इसमें बहुत सारे कल्पना प्रसूत अनुभवों को गूँथते हुए **कौण्डिन्य-सोमा** प्रणय और विवाह, उससे संस्कृति के नये परिदृश्य के निर्माण का मिथकीय विस्तार है। काव्य अतीत गौरव शाली दृष्टि से रचा गया है, देशभावना को बहुत छूता है। छन्दः प्रयोग में इस काव्य के लिये कामायनी प्रतिमान रही है। विचार भूमि की दृष्टि से यह भारतीय उदार अपनाने वाली दृष्टि का ही काव्य है। भारत उपनिवेशवादी नहीं रहा, वह सभ्य बनाने का ढोंग भी नहीं पालता था, इसीलिए उसने न राजनैतिक न सांस्कृतिक उपनिवेश बनाये, उसने केवल साझीदार बनाये, कौण्डिन्य कोई सेना लेकर नहीं गया था, व्यापार को भी नहीं गया था, वह मनुष्य के विविध रूपों में झाँकने वाले मानवीय भाव की तलाश में निकला था, वह अपने स्वरूप को दूसरे में पाने के लिए निकला था। सुशील कुमार ने यही दृष्टि रखी है और यह दृष्टि स्वस्थ हैं इस काव्य के लिए मैं इन्हें बधाई देता हूँ।

आश्विन शुक्ल १३
२०५९ वि० काशी
(अठारह अक्टूबर २००२)
शुक्रवार

(विद्यानिवास मिश्र)

डॉ० रमाशंकर तिवारी

(देव पुरस्कार-विजेता आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पुरस्कार, विद्या भूषण पुरस्कार से सम्मानित पूर्व प्राचार्य का०सु० स्नातकोत्तर महाविद्यालय फैजाबाद पूर्व संयोजक हिन्दी शोध समिति डॉ० राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय फैजाबाद)

डॉ० सुशील कुमार पाण्डेय की नवीनतम काव्यकृति 'कौण्डिन्य' की पाण्डुलिपि देखी। इसके पहले उनकी ''प्रतीक्षा'' पढ़ चुका था। हमें प्रसन्नता है कि वह अपनी कारयित्री प्रतिभा का निरन्तर श्लाघनीय उपयोग करते जा रहे हैं।

(क)

वर्तमान रचना में डॉ० पाण्डेय का उद्देश्य निश्चयमेव व्यापक रहा है, भारतीय संस्कृति के उदात्त स्वरूप का निरूपणः और उन्होंने अपने ढंग से उसे प्रस्तुत करने का सुन्दर प्रयास किया है। प्रसाद की 'कामायनी' की छाया सर्वत्र अनुभूयमान है। काव्य के नायक कौण्डिन्य तथा नायिका सोमा मनु तथा श्रद्धा के किञ्चित् परिवर्तित संस्करण हैं। अन्तर वस्तुविन्यास में है, यह कि कौण्डिन्य ने अपनी मातृभूमि को छोड़कर कम्बोज (कम्बोडिया-कम्पूचिया) में भारतीय संस्कृति का प्रचार किया है, सोमा के सहयोग से जब कि मनु ने श्रद्धा के सहयोग से भारत में ही नयी मानवता के सूत्रपात का प्रयास किया। दार्शनिक दृष्ट्या शैवों का 'आनन्दवाद' प्रसाद का प्रतिपाद्य रहा है, जब कि डॉ० पाण्डेय ने यज्ञों की स्पृहणीयता के साथ ब्रह्म का परोक्षतः नव निरूपण किया है जिसमें समता, अहिंसा, विश्वबन्धुत्व प्रभृति आधुनिक मूल्यों का भी संयोजन हुआ है। सोमा के सौन्दर्य चित्रों में श्रद्धा के सौन्दर्य का सौरभ पहचाना जा सकता है। ''ज्यो आहत-कुचली ऊषा-हो अन्तर पीर सुनाती।'' (मीनाम) के चित्र में वर्तमान नारी-अपमान की घटनाओं की ध्वनि श्रूयमाण है। ''आहत-कुचली ऊषा'' में 'लक्षण-लक्षणा' का अवतरण नितान्त व्यंजना पूर्ण बन पड़ा है। इसी प्रसंग में अभागिनी तरुणी का निम्न निरूपण कला तथा संवेदना का मणि

काञ्चन संयोग प्रस्तुत करता है-

पन्नग फण सा सिर कुचलें
वह श्वाँस न लेने पाये।
अबला के कोरे आँचल
में जो भी दाग लगाये।।

X X X

पीड़ा से बोझिल पुतली
थी नयन-सिन्धु में तिरती।
मोती बन आँसू बूँदे
थीं बरबस नीचे गिरतीं।। (मीनाम)

"कोरे आँचल" की उत्प्रेक्षा काव्य-वैदग्धी की निदर्शक है।

सोमा के रूपचित्र तथा प्रकृति-सुन्दरी के चित्र जो सम्बद्ध प्रकरणों में उपनिबद्ध हैं, वे नितान्त मनोरमणीय हुए हैं। "लहराकर यौवन-नग से छवि-झरना झर-झर झरता"- इस कथन में प्राकृतिक निर्झर के सहायक बिम्ब से सोमा की यौवन लभ्य छवि अथवा सुषमा का जो अभीष्ट बिम्ब बनता है, वह अतीव हृद्य, मनोरम है। निम्न छन्दभी 'नवल-अनंगा' के रूप सौन्दर्य के अनिवारणीय आकर्षण की ललित अभिव्यक्ति करता है-

उसको आती थी व्रीड़ा
थे स्वेद-विन्दु कुछ तन पर।
उमड़ी यौवन सरिता में
बढ़ गया बोझ था मन पर।।

(इरावदी)

(ख)

युवा कवि ने काव्य के उपोद्‌धात-रूप में, 'प्रसाद' की शैली (आमुख) का अनुसरण करते हुए, कौण्डिन्य तथा सोमा की कथा के लिए ऐतिहासिक अथवा पौराणिक आधार खोजने की चेष्टा की है। इतिहासविदों के कथन उद्धृत

करते हुए, उन्होंने यह मत व्यक्त किया है, अथवा इस व्यक्त मत से सहमति व्यक्त की है कि भारतीय पुराणों में या भारतीय प्राक्तन वाङ्मय में कौण्डिन्य की अवहेलना हुई है। कुछ अंशों में यह कथन सही है। किन्तु अनेक ऐसे 'पात्र' या 'व्यक्ति' हैं जिनका चलता उल्लेख हमारे प्राचीन वृत्तों के निबन्धक ग्रन्थों में हुआ है और जो संभवत: इन ग्रन्थों के रचयिताओं की विशिष्ट मनोभूमि के कारण, उपवृंहण के भाजन नहीं बन सके। जहाँ तक कौण्डिन्य का प्रश्न है, उल्लेख्य है कि शतपथ ब्राह्मण में (१४-४-५-१०) इन्हें एक प्रसिद्ध ऋषि बताया गया है जिन्हें विष्णु ने शंकर के क्रोप से बचाया था और तब से वे "विष्णुगुप्त" कहलाने लगे थे। महाभारत सभा पर्व (४.१६) में वे एक महर्षि कहे गये हैं जो युधिष्ठिर की राजसभा के सभासद अनेक ऋषियों में से एक थे। वहीं सभा पर्व (४-१४) में उन्हें अन्यत्र युधिष्ठिर के अश्वमेध का एक सदस्य भी कहा गया है। पद्मपुराण के अनुसार वे एक ऋषि थे जिनका आश्रम हस्तिमती एवं साभ्रमती नदियों के संगम पर स्थित था। एक समय अतिवृष्टि के फलस्वरूप आश्रम में पानी प्रविष्ट कर गया जिस पर उन्होंने नदी सूख जाने का शाप दिया तथा स्वयं भी विष्णुलोक चले गये। इसी प्रकार, महाभारत, आदिपर्व में सोमा एक अप्सरा बतायी गयी है जिसने अर्जुन के जन्मोत्सव में आकर नृत्य किया था। वरुण की पत्नी वारुणी का एक नाम 'मदिरा' है जो सुरा की अधिष्ठात्री देवी है। मदिरा की पुत्री 'चित्रा' जिसका उल्लेख वायुपुराण (९६-१७०) में उपलब्ध है। इस प्रकार सुरा के आधार पर सोमा को चित्रा से समीकृत किया जा सकता है।

इन उल्लेखों में कौण्डिन्य के भारत से बाहर जाने का कथन उपलब्ध नहीं होता। किन्तु शुद्ध ऐतिहासिक सन्दर्भों को इन पौराणिक सन्दर्भों से जोड़कर, कौण्डिन्य का एक व्यापक वृत्त उत्प्रेक्षित किया जा सकता है, जिसमें अधिक विवरण गुंफित हो सकते हैं। कौण्डिन्य का "ऋषित्व" एवं सोमा का "अप्सरात्व" दोनों को मिलाकर वृत्त की रमणीयता में संवर्धन भी किया जा सकता है। ऋषि-सुलभ ब्रह्मज्ञान तथा अप्सरा-सुलभ सौन्दर्य माधुर्य, दोनों को जोड़कर भारतीय संस्कृति का ऐसा बिम्ब निर्मित किया जा सकता है जो ऐहिक तथा आमुष्मिक दोनों पटलों का समन्वित, समंजस सम्मूर्तन कर सके जो भारतीय संस्कृति का वैशिष्ट्य है। अस्तु।

(ग)

प्रस्तुत रचना कथ्य एवं कला, दोनों दृष्टियों से स्तुत्य बन पड़ी है। भाषा तथा शैली प्राञ्जल तथा प्रसाद गुण पूर्ण है। शिल्प की वैदग्धी के एक-दो उदाहरण मैंने ऊपर दिये हैं, जो स्थाली पुलाक न्याय' से रचना के शिल्पसौष्ठव को व्यंजित करते हैं।

मैं डॉ० पाण्डेय को 'कौण्डिन्य' की रचना के लिए साधुवाद देता हूँ, और समझता हूँ, हिन्दी-जगत् में इसका समुचित स्वागत होगा।

२० लक्ष्मणपुरी
फैजाबाद उ०प्र० (डॉ० रमाशंकर तिवारी)

डॉ० राजदेव मिश्र
पूर्व कुलपति
(सम्पूर्णानन्द संस्कृत
विश्वविद्यालय वाराणसी)

कौण्डिन्य-विवेक

कविवर डॉ० सुशील कुमार पाण्डेय को मैं विगत कई वर्षों से अच्छी प्रकार जानता हूँ। वस्तुतः वे अपने अपूर्व वाङ्मय-तप तथा अटूट सास्वत आराधना के कारण ही मेरे सान्निध्य में आये। यद्यपि वे मूलतः विश्व की प्राचीनतम समृद्धिशाली एवं गौरवमयी भाषा संस्कृत में निहित वाङ्मय, विशेषतः ललित-साहित्य के कुशल अध्येता, व्याख्याता एवं बोद्धा हैं, परन्तु वे संस्कृत-साहित्य के साथ ही, हिन्दी साहित्य के भी मनीषी विद्वान, सत्यनिष्ठ आराधक, मुखर वक्ता एवं अप्रतिमकाव्य स्रष्टा हैं। उनमें कारयित्री एवं भावयित्री दोनों प्रतिभाओं का मणिकाञ्चन योग है। वस्तुतः उनकी भावुकता तथा भावकता दोनों स्पृहणीय एवं वरेण्य है। निस्सन्देह उनमें दर्शन एवं वर्णन दोनों की अपूर्व क्षमता है और वे आचार्य भट्टतौत के "दर्शनाद् वर्णनाच्चाथ लोके रूप कवि श्रुतिः" (अर्थात् लोक में कवि पदवी को वही प्राप्त कर सकता है जिसमें दर्शन तथा वर्णन दोनों की प्रतिभा है।) इस उक्ति के चूडान्त निदर्शन हैं।

डॉ० पाण्डेय की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे समर्पित विद्याव्यसनी हैं। जब कभी मेरे पास आते हैं, तब सारस्वत चर्चा, विशेषतः काव्य-सर्जना-चर्चा, ही मुख्य विषय होती है। कई महीनों पहले चर्चा के प्रसङ्ग में ही उन्होंने स्वरचित 'कौण्डिन्य' का उल्लेख किया तथा अपनी यह हार्दिक इच्छा प्रकट की कि मैं उक्त महाकाव्य के विषय में अपनी सम्मति दूँ। कौण्डिन्य विषयक मेरी कतिपय जिज्ञासाओं का समाधान करते हुए उन्होंने मुझे उसकी पाण्डुलिपि समर्पित कर दी। सारस्वत व्यस्तता समेत अन्य अनेक स्वास्थ्यनाशिनी व्यस्तताओं के बावजूद मैंने उक्त काव्य कृति के अवलोकन में अपने जीवन के कुछ क्षणों को कृतार्थ करने का निर्णय ले लिया। महाकाव्य की पाण्डुलिपि देखने के पूर्व

ही मेरी दृष्टि पाण्डुलिपि के साथ संलग्न उन सम्मतियों पर गयी, जिन्हें ऐसे अनेक साहित्य-मनीषियों ने दी थीं, जो साहित्य-गगन के देदीप्यमान नक्षत्र के रूप में वर्षों से उसे आलोकित कर रहे हैं और साहित्य के अध्येताओं के लिए जिनकी सम्मति का महनीय मूल्य है।

वस्तुतः इस महाकाव्य की रचना के प्रेरणास्रोत हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार स्व० श्री कुबेर नाथ राय थे। डॉ० पाण्डेय ने अपने महाकाव्य की भूमिका में इस तथ्य को स्वीकार किया है। छायावाद की पृष्ठभूमि में विरचित कवि पाण्डेय की प्रथम हिन्दी काव्यकृति 'प्रतीक्षा' की समीक्षा में स्व. श्री कुबेर नाथ राय जी ने उन्हें 'कौण्डिन्य' पर काव्य लिखने की प्रेरणा दी थी। उन्होंने साथ ही कौण्डिन्य सम्बन्धी वस्तु की लिए अपनी पुस्तक 'मन पवन की नौका' के अन्तिम निबन्ध 'कौण्डिन्य गाथा' को सङ्केतित किया था। माननीय राय ने अपनी 'कौण्डिन्य गाथा' को चीनी और कम्पूचियन पुराणों पर आश्रित माना है जिसका कलेवर अति स्वल्प है तदनुसार जम्बू के एक ऐसे ब्राह्मण का उल्लेख है, जो अपने गुरु अश्वत्थामा का त्रिशूल लेकर उनके आदेशानुसार विदेशी भूमि पर अपना साम्राज्य स्थापित करने गया था और उसे समुद्र-तट की रानी के प्रतिरोध का सामना करना पड़ा था। कौण्डिन्य ने रानी के ऊपर अपने उत्तरीय का निक्षेप किया था। साहित्य-मनीषी श्री राय ने डॉ०पाण्डेय को इतनी छोटी कथावस्तु पर प्रतीक महाकाव्य लिखने हेतु कल्पना का सहारा लेने का परामर्श दिया था।

भारत का धर्म, इतिहास, संस्कृति, जीवनपद्धति आदि अति प्राचीन हैं। पौराणिक भूगोल के अनुसार सम्पूर्ण पृथ्वी सात द्वीपों (महाद्वीपों) में विभक्त मानी गयी है, जिनमें जम्बुद्वीप सर्व प्रधान है- "जम्बुद्वीपः प्रधानोऽयम् " (कूर्म पुराण)। 'विष्णु पुराण' में जम्बुद्वीप को लक्ष योजन विस्तृत माना गया है और उसमें नौ वर्षों (देशों) की स्थिति को स्वीकार किया गया है, जिनमें भारतवर्ष प्रथम है- 'भारतं प्रथमं वर्षम् '। इस पौराणिक भूगोल के आधार पर बृहत्तर भारत की स्थिति सुबोध बन जाती है, जिसके अन्तर्गत सुवर्णद्वीप तथा स्वर्णभूमि की सत्ता संशय से परे हो जाती है। मध्य एशिया तथा दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में भारतीय, धर्म, संस्कृति आदि के साथ उनसे जुड़े विष्णु, नटराज, शिव आदि देवों तथा अगस्त्य आदि महर्षियों की स्थिति निराधार नहीं रह पाती। उन देशों में भारतीय संस्कृति, धर्म आदि को प्रतिष्ठित करने का श्रेय रामकथा और

बौद्धधर्म को भी है, जो ईसवी सन् के कई सौ वर्ष पूर्व वहाँ पहुँच चुके थे। चन्द्रगुप्त वेदालङ्कार के अनुसार ईसा की प्रथम शताब्दी में कोचीन, चीन, कम्बुज, दक्षिण लाओस, स्याम, मलाया प्रायद्वीप में एक हिन्दू राज्य की सत्ता की प्रतीति होती है। चीनी इतिहासकार उसके वास्तविक नाम का पता नहीं लगा सके हैं। चीनी लोग उसे 'फूनान' कहते थे। फूनान की स्थापना दक्षिण भारत के कौण्डिन्य नामक एक ब्राह्मण ने की थी। कौण्डिन्य ने वहाँ के नाग पूजक निवासियों को परास्तकर 'सोमा' नामक नागकन्या से विवाह किया और सोमा के नाम पर सोमवंश की स्थापना की।

इसका उल्लेख लौह-पत्रों पर मिलता है। ''कुलासीद्‌भुजगेन्द्र कन्या सोमेति---- कौण्डिन्य नाम्ना द्विजपुङ्गवेन''।

विजेन राय चटर्जी के अनुसार कम्बुज निवासियों में नटराज के रूप में भगवान् शिव की पूजा प्रिय थी। वहाँ नटराज की मूर्तियाँ बड़ी संख्या में मिलती हैं। वहाँ कौण्डिन्य नामक ब्राहमण ने अपने शैव धर्मावलम्बी साथियों के साथ सर्वप्रथम पदार्पण किया था। श्री चटर्जी ने शतपथ ब्राहमण में ऋषि कौण्डिन्य, वृहदारण्यकोपनिषद् में शाण्डिल्य के शिष्य कौण्डिन्य और कौण्डिन्य गोत्र का जो उल्लेख किया है उससे असहमति का प्रश्न नहीं उठता। साधारणतः कौण्डिन्य यह नाम सामान्य जन-मानस में कुतूहल एवं जिज्ञासा के साथ आश्चर्य का भी जनक हो सकता है परन्तु प्राचीन भारतीय वाङ्मय, संस्कृति, इतिहास आदि के अध्येता के लिये वह विदित होने से सहज है।

इस सन्दर्भ में 'कौण्डिन्य' तथा 'सोमा' शब्द की वैयाकरण व्युत्पत्ति का प्राचीन वाङ्मय में उल्लेख तथा नागजाति की स्थिति पर थोड़ा विचार कर लेना असमीचीन तथा अप्रासङ्गिक नहीं है।

आश्वलायन में 'कौण्डिन्य' शब्द का उल्लेखन हुआ है। 'कुण्डिनानां वशिष्ठ मैत्रावरुण कौण्डिन्येति'। इसी प्रकार पाणिनिके सूत्र ''आगस्त्य कौण्डिन्य योरगस्तिकुण्डिनच'' में भी कौण्डिन्य शब्द उल्लिखित है। इन उद्धरणों से 'कौण्डिन्य' की पाणिनि काल में अथवा उससे पूर्व काल में स्थिति का बोध होता है। साथ ही यह भी प्रतीत होता है कि 'कौण्डिन्य' नाम के कोई ऋषि विशेष थे। महाभारत के एक उद्धरण से यह ज्ञात होता है कि 'कुण्डिन' नाम के कोई कुरुवंशी ऋषि थे। भोजपुत्र के शासन काल में भी 'कुण्डिन' का उल्लेख

मिलता है- "कुण्डिने पुण्डरीकाक्ष भोजपुत्रस्य शासनात्"। यहाँ यह स्मर्तव्य है कि 'कौण्डिन्य' शब्द के मूल में 'कुण्डिन' शब्द ही है।

अब थोड़ा 'कौण्डिन्य' शब्द की वैयाकरण व्युत्पत्ति पर विचार कर लेना सङ्गत तथा समीचीन है। संस्कृत-व्याकरण में 'कुडि' धातु 'दाह', 'वैकल्य' 'रक्षण' तथा 'पाल्य' इन अर्थों में वर्णित है। उक्त धातु से 'बहुलमन्यत्रापि उणा० २/४९ इस सूत्र से कर्ता में इनच् प्रतयय लगने पर कुण्डिनशब्द व्युत्पन्न होता है, और वह मुनि विशेष का वाचक बनता है। (कुण्डिन इति मुनि विशेषः- उणादिकोशः) इस कुण्डिन शब्द से 'कुण्डिनस्य गोत्रापत्यं पुमान्' इस अर्थ में " गर्गादिभ्योयञ्' (पा०सू०४-१-१०५) इस सूत्र से गोत्रापत्य-रूप अर्थ में 'यञ्' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप करने पर 'कुण्डिन+य' इस दशा में 'यस्येति च' सूत्र से नकार के अकार का लोप और "तद्धितेष्वचामादेः" सूत्र से 'कु' के 'उ' को 'औ' वृद्धि करने पर 'कौण्डिन्य' शब्द बनता है जिसका अर्थ होता है 'कुण्डिन नामक ऋषि विशेष का गोत्रापत्य'। संस्कृत में कौण्डिन्यः, कोण्डिन्यौ और कुण्डिनाः इस प्रकार से रूप चलता है। व्याकरण में 'तक्र कौण्डिन्य' न्याय में भी कौण्डिन्य का उल्लेख हुआ है। इससे भी कौण्डिन्य की प्राचीनता तथा उनके नाम के प्रचलित होने की बात सिद्ध होती है।

'कौण्डिन्य' की वैयाकरण व्युत्पत्ति पर प्रकाश डालने के पश्चात् 'सोमा' शब्द पर विचार कर लेना क्रम-प्राप्त है। संस्कृत में अभिषव अर्थ में 'षुञ्' प्रसव-ऐश्वर्य अर्थ में 'सु' धातु, प्राणि-प्रसव अर्थ में 'सूड' तथा प्राणि गर्भ विमोचन अर्थ में 'सूङ्' धातु पठित है। प्राणि गर्भ विमोचनार्थक 'सूङ्' (सूते) धातु से अमृतं सूते अर्थात् जनकल्याण के लिए जो अपने गर्भ-अर्थात् अन्तः करण से अमृत उत्पन्न करता है, इस अर्थ में (धात्वादि के ष् के स्थान पर "धात्वादेः षःसः" सूत्र से स् होने पर)-('सू' धातु से) कर्ता अर्थ में उणादि सूत्र "अर्तिस्तुषुड् ----" सूत्र से 'मन्' प्रत्यय होने और अनुबन्ध लोप होने तथा विभक्ति कार्य होने पर पुँल्लिङ्ग में 'सोमः' शब्द निष्पन्न होता है जिसके चन्द्र, वानर, कुबेर, पितृदेव, समीरण आदि अनेक अर्थ होते हैं। उसका रूप चलता है-सोमः, सोमौ, सोमाः४/५९० इस अकरान्त 'सोमा' शब्द के अतिरिक्त नकारान्त सोमन् शब्द भी व्युत्पन्न होता है। 'षू' धातु से उणादि सूत्र- नामन् - सीमन- व्योमन् से मनिन् प्रत्यय होने पर निपातन से सोमन् (नकारान्त) शब्द भी व्युत्पन्न होता है। उसका भी अर्थ चन्द्रमा होता है।

सोमा को नाग जाति की कन्या कहा जाता है। नाग जाति का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। कुमार सम्भव के "असूत सा नागवधूपभोग्यं मैनाक मम्भोनिधिवद्धसख्यम् " समुद्री भागों में उनके निवास का भी बोध होता है। पुराणों में नागकन्याओं को रमणीय द्वीप का निवासी कहा गया है। ऐसी स्थिति में 'सोमा' का नागवंशीय और सुन्दर होना असङ्गत नहीं है।

यद्यपि कविवर डॉ० पाण्डेय की 'कौण्डिन्य' नामक काव्यकृति प्राचीन अलङ्कार-शास्त्राचार्यों द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य के लक्षण की कसौटी पर पूर्णतः खरी नहीं उतरती, परन्तु "प्रधान्येन व्यपादेशा भवन्ति" इस न्याय के अनुसार उसे 'महाकाव्य' नामक काव्य विधा के अन्तर्गत परिगणित करने में न कोई विसङ्गति है और न ही अनौचित्य। अलङ्कार शास्त्राचार्य विश्वनाथ के 'साहित्य दर्पण' के अनुसार महाकाव्य का नायक धीरोदात्त गुणों से युवत सत्कुलोत्पन्न क्षत्रिय अथवा देवता होता है। कौण्डिन्य न क्षत्रिय हैं और न देवता, पर वे निस्सन्देह धीरोदात्त नायक के गुणों से मण्डित हैं तथापि "विद्वांसो वै देवाः" इस सदुक्ति के अनुसार विद्वान् होने के कारण उन्हें देवकोटि में परिगणित कर लेने में कोई हर्ज नहीं है। इस दृष्टि से 'कौण्डिन्य' का महाकाव्य का नायकत्व निर्विवाद है।

लक्षणानुसार 'रघुवंश', 'बुद्धचरित' आदि की भाँति नायक के नाम पर ही इस महाकाव्य का नामकरण है। इसमें कुल १८ सर्ग हैं, वे हैं – १-अध्ययन २- स्वाती ३-पथ ४-नालन्दा ५-अश्वत्थामा ६-शाप ७-आदेश ८-पत्तन ९-महोदधि १०-वैनतेय ११-विष्णु १२-पर्व १३-चित्रा १४-मीकाङ् १५-मीनाम १६-इरावदी १७-कला १८-आलोक।

महाकाव्य में वीररस (कर्मवीर-दयावीर) का अङ्गित्व एवं शृङ्गार आदि रसों का अङ्गत्व है। महाकाव्य का प्रारम्भ

"मानव-मानव के मन में
सञ्ज्ञान-प्रभा भर जाये।
समरसता हो जन-जन में
वेदों की संस्कृति प्रसरे"।। (अध्ययन)

इस मङ्गलकामनामूलक आशीर्वचन से हुआ है। सम्पूर्ण महाकाव्य में

यथा स्थान सागर, नदी, वन, चन्द्र, सूर्य, सन्ध्या, प्रातः आदि की काव्यमयी ललित वर्णना है। महाकाव्य के लक्षण के अनुसार उसकी वस्तु ऐतिहासिक (इतिहासोद्भवम्) होती है अथवा सज्जनाश्रित (सज्जनारयम्)। मेरे मत में इस महाकाव्य की वस्तु ऐतिहासिक होने के साथ सज्जनता दोनों निर्विवाद है। इन सभी विन्दुओं को दृष्टिगत कर विचार करने पर 'कौण्डिन्य' का महाकाव्यत्व निस्सन्दिग्ध है।

अलङ्कार शास्त्रीय ग्रन्थों में काव्य प्रयोजनों का विशद विवेचन किया गया है, जिनमें यश, अर्थ, व्यवहार ज्ञान, परमानन्द (रसास्वाद) कान्ता सम्मित उपदेश आदि परिगणित हैं। इन सभी प्रयोजनों में अलौकिक आनन्द की प्राप्ति को सर्वश्रेष्ठ प्रयोजन माना गया है। सम्पूर्ण कौण्डिन्य महाकाव्य में जिस प्रकार सरस भावों का उन्मीलन हुआ है, उससे निस्सन्देह यह काव्यकृति सकल प्रयोजन मौलिभूत ब्रहमानन्द सहोदर रस के परिपाक का एक अनुपम आगार बन गयी है जिससे सहृदय का सरस हृदय हठात् रस सिक्त हो जाता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि इस महाकाव्य का एक अन्य प्रयोजन विशेष (उद्देश्य विशेष) है जो महाकाव्य के प्रारम्भ में ही इङ्गित हो गया है, जब कौण्डिन्य के पितृकल्प कुलपति उन्हें यह आदेश देते हैं-

'कम्बुज-धरती पर जाओ
वे गदगद स्वर में बोले।
श्रुति-संस्कृति को फैलाओ
जन-जन की सेवा करके'।।(स्वाती)

X X X

'आर्यों की कीर्ति बढ़ाना
कम्बुज की कनक धरा पर'। (स्वाती)

गुरु के इस आदेश में ही कौण्डिन्य की कम्बुज यात्रा अर्थात् विदेश-यात्रा का उद्देश्य छिपा है। वह उद्देश्य भी मात्र भौतिक उद्देश्य नहीं हैं उसमें भारत के भौतिक साम्राज्य का विस्तार नहीं है, प्रत्युत् श्रुति-संस्कृति अथवा आर्य-संस्कृति का प्रचार-प्रसार निहित है जिसका लक्ष्य है समस्त विश्व को आर्य (श्रेष्ठ) बनाना-"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"। भौतिक साम्राज्य की प्राप्ति के

साधन हिंसा, भय, आतङ्क हैं, जबकि सांस्कृतिक साम्राज्य की आधारशिला है-जन सेवा भाव तथा जन को सद्‌भाव एवं स्नेह से भावित करना। आशा का दीप जलाकर, विश्वास को सम्बल बनाकर, दलितों-दीन-दु:खियों को अपनाकर ही आर्य-संस्कृति का चिरस्थायी विस्तार सम्भव था तभी तो लोक विश्रुत वैदिक संस्कृति के महान् पुरोधा एवं सावधान प्रहरी कुलपति ने अपने शिष्य कौण्डिन्य को आदेश दिया-

'कम्बुज धरती पर जाओ' (स्वाती)

X X X

'घट को नित भरते रहना
मधु-सुधा-स्नेह से रीते।
जीवन भर हरते रहना
दलितों, दु:खितों के दु:ख को'।।(स्वाती)

सोमवत् प्रियदर्शना कम्बुज की चन्द्रिका सोमा के साथ कौण्डिन्य का प्रणय-सूत्र में बँधना भी गुरु-आज्ञा को पूर्ण काम बनाने का एक साधन ही है। न मात्र भोग-विलास उसका लक्ष्य है और न ही उसमें काम वासना की कोई गन्ध है। प्रकृति-पुरुष तथा मनु-शतरूपा के संयोग की भाँति उसका लक्ष्य है, सृष्टि और ऐसी सृष्टि जिसमें पापका घड़ा फूट जाता है और पुण्य का साम्राज्य स्थापित हो जाता है। कौण्डिन्य तथा सोमा दोनों प्रेमी और प्रेमिका की भूमि से ऊपर उठकर पति-पत्नी की भूमि में इसलिए प्रतिष्ठित होना चाहते हैं जिससे वे स्वर्ण भूमि (कम्बुज) को पुण्य-भूमि, आर्य भूमि के रूप में प्रतिष्ठित कर उसकी सेवा कर सकें- उस सन्दर्भ में कौण्डिन्य के अधोलिखित वचन द्रष्टव्य हैं-

'इस पाप-कुम्भ को फोड़े
अब सब पति-पत्नी बनकर।
यह यूथ-विलास अशुभ है,
खुश हों इसका मर्दन कर।। (मीकाङ)

X X X

श्रुति-संस्कृति को फैलाकर
सब में सुख भरना होगा।
अब मुझको कनक-धरा का
अवलोकन करना होगा।।(मीकाङ)

इस प्रकार शिष्य प्रवर कौण्डिन्य द्वारा प्रदत्त गुरु दक्षिणा स्वयं तो कृतार्थ होती ही है साथ ही वह गुरुता, शिष्यता, कविता तथा श्रुति-संस्कृति-शुचिता सभी को कृतार्थ कर देती है। यही है इस महाकाव्य का लक्ष्य।

आज के इस भौतिक एवं वैज्ञानिक युग में 'कौण्डिन्य' महाकाव्य जैसी काव्य कृतियों की महती उपयोगिता है। एक ओर जहाँ यह वाङ्मयी सृष्टि अपने अध्येताओं, सहृदयों के सरस हृदयों का समाह्लाद करेगी वहीं दूसरी ओर जम्बूद्वीप के विशाल अङ्ग भारत की अति प्राचीन विश्व बन्धुत्व भावनामयी, उदार तथा उदात्त संस्कृति के विश्व के सुदूर अञ्चलों तक विस्तृत प्रभावातिशय का ख्यापन भी करेगी। साथ ही अपने देश के उन महान् पूर्वजों की यशः स्मारिका भी बनेगी जिनकी विदेश यात्रा का उद्देश्य मात्र भौतिक साम्राज्य का विस्तार ही नहीं था अपितु भारत के सांस्कृतिक साम्राज्य का विस्तार था।

सम्पूर्ण महाकाव्य में यत्र-तत्र नगण्य रूप से कुछ वर्तनीगत त्रुटियाँ रह गयी हैं और कहीं-कहीं वाक्य-गठन में साधारण त्रुटियाँ दृष्टिगोचर हुई हैं। पर महाकवि कालिदास की 'एको हि दोषो गुण सन्निपाते' (कुमारसम्भव) इस उक्ति के अनुसार तथाकथित न्यूनतायें गुण समवाय के समक्ष क्षीण सी हो गयी हैं। कुल मिलाकर यह महाकाव्य, वस्तु सङ्घटना की दृष्टि से, भाषा-शैली की उदात्तता तथा प्रवाहमयता की दृष्टि से, काव्य-शोभावर्धक अलङ्कार-योजना की दृष्टि से, रस भावोन्मीलन की दृष्टि से छन्दःप्रयोग की दृष्टि से, चरित्राङ्कन की दृष्टि से, प्रकृति वर्णना की दृष्टि से, निस्सन्देह आधुनिक हिन्दी-काव्य-गगन का एक देदीव्यमान अनोखा नक्षत्र सा बन गया है। मेरा यह स्पष्ट मत है कि प्रतीक काव्य के रूप में कविवर पाण्डेय की यह अनुपम वाङ्मयी सृष्टि एक ओर जहाँ हिन्दी-साहित्य को गौरव शाली बनायेगी, वहीं दूसरी ओर उनका यशेविस्तार भी करेगी। ऐसी लोकोत्तर वर्णनाशालिनी काव्यकृति के लिए डॉ० पाण्डेय भूरिशः साधुवाद के पात्र हैं।

कार्तिकी पूर्णिमा

विं०सं०२०५७ तदनुसार
११ नवम्बर २००० ईसवी
आलोकपुरी, नियावाँ रोड
फैजाबाद

(डॉ० राजदेव मिश्र)
पूर्व कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत
विश्वविद्यालय वाराणसी।

□□

डॉ० आद्याप्रसाद सिंह 'प्रदीप'
उ०प्र० हिन्दी संस्थान लखनऊ से तीन
बार जायसी पुरस्कार प्राप्त, शताधिक कृतियों
के प्रणेता रानेपुर, पलियागोलपुर, सुलतानपुर उ०प्र०

कौण्डिन्य भारतीय-संस्कृति का अत्यन्त गौरवपूर्ण पृष्ठ है जिस पर सदियों से जमी काल की धूलि की मोटी परत को उतारकर झाड़ पोंछ कर डॉ० सुशील कुमार पाण्डेय ने महाकाव्य के रूप में सुसज्जित कर ज्ञान के अन्वेषण के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण एवं मौलिक कार्य किया है। दक्षिण पूर्व एशिया की भारतीय संस्कृति विषयक पुस्तकों की हिन्दी में अत्यल्पता है, इस दिशा में भी कौण्डिन्य का योगदान उल्लेखनीय है।

डॉ० आद्याप्रसाद सिंह
११-११-२००१

स्नेह-सौरभ

सम्पूर्ण सृष्टि का मस्तक,
कवि-चरणों में झुक जाता।
कवि की लेखनी न होती,
संस्कृति-विकास रुक जाता।।

निर्मल कविता हर लेती,
मानव की मनोव्यथा को।
तन्मय होकर के गाया,
कवि ने 'कौण्डिन्य' कथा को।

फहराये दूर क्षितिज तक,
श्रुति-संस्कृति का ध्वज प्यारा।
जग को सत्पथ दिखालाये,
'कौण्डिन्य' काव्य यह न्यारा।।

अभिनव विकास का अनुपम,
उज्जवल वितान तन जाये।
कवि की कमनीय कला पा,
'कौण्डिन्य' अमर बन जाये।।

शुचि काव्यकला का साधक,
होता 'जटायु' युग चेता।
अभिनन्दमीय है सबका,
सचमुच कौण्डिन्य-प्रणेता।।

ससद्भाव-

मथुरा प्रसाद सिंह 'जटायु'
आशुकवि 'विक्रमभवन' शाहगंज मार्ग,
कादीपुर, सुलतानपुर (उ०प्र०)

१८-०६-१९८४ई०

अनुक्रम

कौण्डिन्य लेखन काल

प्रारम्भः तिथि १५-१२-१९८३ ईसवी

समापनः तिथि २४-०४-१९८४ ईसवी

कादीपुर सुलतानपुर उ०प्र०

मानव-मानव के मन में
सञ्ज्ञान-प्रभा भर जाये।
समरसता हो जन-जन में
वेदों की संस्कृति प्रसरे।।

जय विष्णु-प्रजापति की जय
जय वाक्-वरुण-सविता की।
हर अनाचार का हो क्षय
अम्बर में गूँज रहा था।।

वैदिक-संस्कृति के प्रतिनिधि
कौण्डिन्य महा मेधावी।
रहती उनकी हर गतिविधि
मानव-सेवा में अर्पित।।

करने उनका अभिनन्दन
कम्बुज की पुण्य धरा पर।
लेकर के रोली-चन्दन
नागर समूह था आया।।

''हैं लोग सभी आभारी''
नवयुवक एक उठ बोला।
''है इच्छा प्रबल हमारी
कृपया निज कथा सुनायें।।''

मस्तक पर तुरत लगाया
शुचि स्वर्ण-भूमि रज-कण को।
आनन्द-अश्रु छलकाया
कौण्डिन्य मुदित मन बोले।।

"ओङ्कार-ऋचा थे गाते
सस्वर ऋषि-कुल कानन में।
उसको तत्सम दुहराते
सारिका-कीर तरुवर पर।।

थे पल्लव अतिशय काले
नित यजन-धूम से मिलकर।
हो जाते परम निराले
आती जब सन्ध्या रानी।।

जब यजन-कुण्ड में जलती
शुचि अग्नि-शिखा थी ऊँची।
तब पवन सङ्ग उड़ मिलती
थी आज्य-सुगन्धि चतुर्दिक्।।

थे जीवन शासित करते
सन्तोष-नियम-यम-संयम।
अन्तस् में ऊर्जा भरते।
विज्ञान, वेदमय चिन्तन।।

थे अपना गीत सुनाते
मिल विविध विहग निज स्वर से।
मधु राग कहाँ से लाते
अनुकूल किसे करने को??

थी लता-वृक्ष की डाली
पुष्पों-पत्रों से भूषित।
पा प्रात सान्ध्य की लाली
वे और सुघर हो जाती।।

मृग-यूथ चौकड़ी भरते
उस तपवन के परिसर में।
धीरे-धीरे पग धरते।
वनराज विगत चिन्ता हो।।

कलहंस वृन्द थे तिरते।
पल्वल के निर्मल जल में।
नयनों को बरबस हरते
थे दिव्य कुशेशय बहुविधि।।

शीतल-जल डाला जाता।
पीपल-वट-पाकड़ के जड़ में
था देव-वृन्द हरषाता
इनके अर्चन-वन्दन से।।

थी नवल बलाका माला
नव सरस बलाहक तल में।
यौवन की पहली हाला
जिनके नयनों में छलकी।।

परिजन के सँग में करते
गजराज वारि में क्रीड़ा।
वे शुण्डों में जल भरते
फिर दूर फेंक देते थे।।

अनुराग-वर्ण ढलकाते
आरक्त सरोज निचय थे।
ये गन्धि-पराग चढ़ाते
पद्मिनी-प्रभा के पग में।।

वैदिक गुरुकुल की धरती
थी विविध तृणों से धानी।
हिम के मोती से भरती
ऊषा उसके अञ्चल को।।

गोमाता पूजी जातीं
थी उनकी सेवा होती।
नव शक्ति-स्रोत थी पाती
गोदुग्ध पान कर जनता।।

फणिवृन्द शीत-सुख पाते
लिपटे चन्दन तरुओं से।
थे नयन खुले रह जाते
बहु रूप देख सर्पों के।।

मन को बरबस हरता था
अभिनव तमाल कानन में।
मधु हास कौन भरता था
मल्लिका-लता अधरों में??

ज्यों जल में अम्बुज पत्ता
जल से न प्रभावित होता।
जग में रहते अलबत्ता
निर्लिप्त भाव से गुरुजन।।

सरिता की पावन धारा
जैसा जीवन गुरुजन का।
था अर्पित जीवन सारा
जन-कल्मष प्रक्षालन में।।

निज गुरु को ब्रह्म कहूँ मैं
या कहूँ 'पुरुष' या 'ईश्वर'।
उनकी ही शरण गहूँ मैं
थी माया जिनकी चेरी।।

वे सकल जगत से न्यारे
गुरु, कुश-वेदी पर बैठे।
मिटते अज्ञान हमारे
मिलते ही दर्शन जिनके।।

वे सवन कर्म को सारे
थे मनोयोग से करते।
उनकी आँखों के तारे
थे हवन-धूम से रक्तिम।।

था प्रबल आत्म बल मन में
वे शक्ति-शान्ति के पोषक।
था ओज-तेज-बल तन में
थे न्याय, नेह के तोषक।।

सहलाते कोमल कर से
पशुओं के शिशुओं को भी।
झाँका करते कोटर से
दाने पाने को पक्षी।।

थे सोच दुःखी हो जाते
वे जीवों की पीड़ा को।
सबको सदुपाय बताते
जग-कष्ट दूर करने का।।

सब शिष्य कान निज खोले
गुरु के समीप बैठे थे।
गुरुदेव स्नेह से बोले
हम लोगों को समझाकर।।

"हम यजन-कर्म करते हैं
हवि मिलती देवगणों को।
अपने उर को भरते हैं
हम ज्ञान-राशि से अनुपम।।

जग का मङ्गल हो जाये
प्रार्थना यही ईश्वर से!
वह भी चेतनता पाये
जो अब तक अलसाया था।।

हम करें प्रकृति की सेवा
जो देती हमें सहारा।
उपलब्ध फूल फल मेवा
है प्रकृति सहचरी सबकी।।

धरती को हरित बनायें
कर लता-वृक्ष की सेवा।
जीवन को सरस सजायें
वन की श्यामल छाया में।।

हम लोग अनृण हो जायें
कर विपिन-देव की पूजा।
संहर्ता कहे न जायें
भावी पीढ़ी के द्वारा।।

तन-मन बलयुक्त बनायें
वन के पत्रों-फूलों से।
परलोक लाभ को पायें
जग-मङ्गल करते-करते।।

धरती का अञ्चल भर दें
हम पादप-रोपण करके।
संसृति को सुखमय कर दें
तरुओं का सम्बल लेकर।।

जिससे विवेक मिट जाये
लेकर अनर्थ जो आता।
हम मन से दूर भगायें
उस अशुभ काम कुत्सित को।।

पालन-पोषण कर पायें
हो लघु परिवार हमारा।
उतना ही भार उठायें
सम्भव जितना ढोना हो।।

शिक्षा-सुविधा सब पायें
अपनी भावी पीढ़ी में।
मङ्गलमय पथ से जायें।
कर विकसित अपनी क्षमता।।

हो सत्कर्त्तव्य हमारा
पशु-पक्षी रहें सुरक्षित।
कल्याण युक्त जग सारा
सब प्राणी सदा सुखी हों।।

सेवा को लक्ष्य बनायें
हम रचें जगत अति सुन्दर।
अविरल मधुरस बरसायें
अनुराग भरा हो मन में।।

जग-पीड़ा को पहचानें
धन-बल के मद को त्यागें
हम धन्य स्वयं को मानें
जब आयें काम किसी के।।

हम परमलक्ष्य को पायें
भव हित पथ पर चलकर ही।
सबमें समरसता लायें
मिट जाये भेद जगत का।।

हो मार्ग प्रशस्त हमारा
सारा जग मङ्गलमय हो।
बह चले ज्ञान की धारा
हो अन्ध-तमस का मर्दन।।

हम सबल आर्य बन जायें
हों सत्पथ के अनुगामी।
जागृति-सन्देश सुनायें
प्रतिदिन ऊषा की लाली।।

हम प्रगति-पन्थ पर जायें
भूलों-भटकों के सँग में।
हम ऐसी शिक्षा पायें
जो करे सृष्टि का मङ्गल।।"

थी मौन हुई गुरुवाणी
पावन सन्देश सुनाकर
फिर गतिविधियाँ कल्याणी
प्रारम्भ हुई शिष्यों की।।

जन-सेवा-शिविर लगाते
गाँवों में हम सब जाकर।
जीने का ढंग सिखाते
हम सभी गाँव वालों को।।

हम सबको जन सेवा से
तीर्थाटन का फल मिलता।
बढ़कर मिश्री-मेवा से
लगती थी सबकी बोली।।

छात्राएँ भी पढ़ती थीं
छात्रों के सङ्ग निरन्तर।
वे ज्ञान-शिखर चढ़ती थीं
शास्त्रों में थी पारङ्गत।।

श्रमदान साथ में होता
छात्रों का, छात्राओं का।
मन के कल्मष को धोता
गुरु का संरक्षण पाकर।।

पाते सब अन्तेवासी
गुरुओं का स्नेह बराबर।
सब थे सद्ज्ञान उपासी
सब परम भाग्यशाली थे।।

गुरुकुल में हमने पायी
शिक्षा शास्त्रों-शस्त्रों की।
जितने थे सह अध्यायी
सबमें अनुराग भरा था।।

चारों वेदों की शिक्षा
पाकर हम धन्य हुए थे।
पूरी होती हर इच्छा
गुरुदेव कल्पतरु सम थे।।

मिल गया ज्ञान हर सम्भव
विज्ञान, गणित शिल्पों का।
साहित्य-शास्त्र का अनुभव
वेदाङ्ग छहों, षड् दर्शन।।

□□

थी पढ़ती मेरे सँग में
पूर्णिमा सरीखी बाला।
हम रँगे प्रेम के रँग में
गुरुकुल की अनुपम निधि थी।।

वह थी स्वाती कहलाती
मृदुता थी उसके तन में।
नित घी के दीप जलाती
वह गोधूली-वेला में।।

थी सघन सुघर अलकावलि
था व्याकुल हृदय भटकता।
तन-मन में थी पुलकावलि
वह जीवन-ज्योति बनी थी।।

चेतना रहित सी करतीं
चितवन की तीक्ष्ण कटारें।
मन को बरबस थी हरती
रच नवल जगत का सपना।।

नयनों के कोर सुसज्जित
थे रूप-सरोज समन्वित।
वह हो जाती थी लज्जित
जब मेरे सम्मुख होती।।

मृदु आँखें पुलक रही थीं
लावण्य छलकता रहता।
मादकता ढुलक रही थी
माधुर्य उपनता रहता।।

सत-रज-तम का अवलम्बन
नयनों में मिल जाता था।
आकर्षित होता था मन
अनियन्त्रित हो जाता था।।

जब उसके मुख पर पड़तीं
शोभन सन्ध्या की किरणें।
अनुराग-रत्न तब जड़तीं
कोमल कपोल पर जैसे।।

सरसिज-सुषमा सकुचाती
उसके अधरों के सम्मुख।
वह उषा सदृश मुसकाती
मानस के ऊर्ध्व क्षितिज पर।।

पञ्चम-सुर में थी गाती
गीतों की तान अनोखी।
मुझको लगती थी स्वाती
छवि की अथाह सागर-सी।।

अङ्गों से झर-झर झरती
पाटलवर्णी अरुणाभा।
मधुरस में डूबा करती
पुलकावलि पूरित आँखें।।

मलयानिल धीरे बहता
सुन्दरता के उपवन में।
विह्वल हो करता रहता
मैं अनुभव मनस पटल पर।।

प्रिय रूप सलोना उसका
आनन्द-प्रभा मुसकाती।
था जादू टोना उसका
मन को आन्दोलित करता।।

आकर्षक विद्युत धारा
उसके अङ्गों में बहती।
तन-मन था झङ्कृत सारा
जब नयन रूप को छूते।।

थिरका करती मधुबाला
मधु का सागर जब हिलता।
झूमा करती मधुशाला
मन मदिर नाच उठता था।।

ऊषा प्रेयसि मुसकाती
जल में शोभा-सरिता के।
दिनकर का तेज बढ़ाती
सर्वस्व निछावर करके।।

अभिसारेच्छा थी पलती
ललचाये हुए हृदय में।
तड़पन की ज्वाला जलती।
व्याकुलता बढ़ती जाती।।

नयनों में प्रीति निराली
जब लुकती-छिपती आयी।
मेरे उर ने दीवाली
का पावन पर्व मनाया।।

प्रतिबिम्ब स्वयं का पाता
स्वाती के उर-दर्पण में।
था तन प्यासा रह जाता
बेसुध हो जाता था मन।।

थे नयन विकल हो जाते
जब देख न उसको पाते
जब उसका दर्शन पाते
वे पुलकित हो जाते थे।।

थी पलक झुका वह लेती
जब पलक उठाता मैं था।
मन में उलझन भर देती
नयनों की मधुचर्या से।।

अविराम निहारा करता
सौन्दर्य-शिल्प को प्रेमी।
छवि-राशि अपरिमित भरता
निज नयनों की झोली में।।

थी सुधा-तरङ्गिनी बहती
मैं जिसमें डूब नहाता।
सङ्कोच दिखाती रहती
सङ्केत समझता था मैं।।

संसार नवीन बसाया
आकर्षण-पूर्ण प्रणय ने।
था अन्तरिक्ष भर आया।
ज्यों लाल गुलाल कणों से।।

जब जूही थी खिल जाती
तब रक्त अशोक सिहरता।
कोमल कलिका मुसकाती
तब श्वेत अनार विहँसता।।

वह कुसुम-चयन थी करती
जब ऊषा-वेला आती।
वन-श्री आकाङ्क्षा धरती
उसका आनन छूने की।।

जब मुसकाकर छिप जाती
वह ललित लता सङ्कुल में।
झुरमुट से छनकर आती
छवि-रश्मि मदिर नयनों की।।

सरसिज-सुगन्धि थी झरती
मलयानिल सँग कानन में।
उपहास सुरभि का करतीं
अविरल उसकी उच्छ्वाँसें।।

कुछ दूर बढ़े पग मेरे
था उनमें विमित विकम्पन।
थे नवल पराग बिखेरे
तब सुमनों ने हँस-हँस कर।।

मैंने पूछा मृदु स्वर से
ये सुमन मिलेंगे किसको?
हे देवि! आज भास्वर में
सुर कौन सुपूजित होगा??

अञ्जलि भर पुष्प निकाला
झट सुमन-पात्र से उसने।
प्रेमोपहार दे डाला
मुझको निज कर-किसलय से।।

मन-सुमन खिला तब मेरा
नव-निधि मिल गयी मुझे थी।
जीवन का सुखद सबेरा
स्वाती, ऊषा बन आयी।।

तब मलयानिल था झूमा
झूमे तरु, झूमी डाली।
अलि ने कलिका को चूमा
उसने अवगुण्ठन खोला।।

भू को समलङ्कृत करते
पुलकित प्रसून गिर-गिर कर।
झर-झर पराग थे झरते
ले मदिर गन्धि अलबेली।।

दो भावुक उर थे मिलते
अपनत्व भाव से प्रतिदिन।
मधुभाव-कुसुम थे खिलते
हम दोनों के मन ही मन।।

जब सन्ध्या-दीपक जलते
उर में प्रकाश भर जाता।
दो तृषित हृदय थे मिलते
तब राग-भरी वेला में।।

थीं अरुण-रश्मियाँ आयीं
मधुरिम प्रातः वेला में।
चिन्तन सरिता लहरायी
मन था डुबकियाँ लगाता।।

इस जग का रूप निराला
मुझको पड़ता दिखलायी।
पहने सुख-दुःख की माला
यह अपनी धुन में चलता।।

अवतार लिया करते हैं
कुछ कालजयी हर युग में।
उपकार किया करते हैं
तन-मन न्यौछावर करके।।

हम उनके ही गुण गायें
अनुकरण करें उनका ही।
उनको आदर्श बनायें
जन-सेवा में दिन बीतें।।

है नश्वर देह हमारी
है नश्वर जगत हमारा।
मन की इच्छाएँ सारी
नश्वर हैं पूर्ण न होतीं।।

है सत्कर्त्तव्य हमारा
मानव की सेवा करना।
तिनके का सबल सहारा
होता डूबते हुओं का।।

कुलपति ने मुझे बुलाया
जब मैं यह सोच रहा था।
आशीष अपरिमित पाया
करके समुचित अभिवादन।।

"प्रिय शिष्य! निकट तुम आओ'
गुरुदेव स्नेह से बोले।
"हे वत्स मुझे बतलाओ,,
बैठे क्या सोच रहे थे??

अपना विचार कह डाला
मैंने गुरुवर के सम्मुख।
मुझको मिल गया उजाला
हो गया पन्थ मङ्गलमय।।

मानव की सेवा करना
गुरुवर! मैं चाह रहा हूँ।
जन-जन की पीड़ा हरना
है लक्ष्य बना जीवन का।।

"कम्बुज धरती पर जाओ"
वे गदगद स्वर में बोले।
"श्रुति-संस्कृति को फैलाओ
जन-जन की सेवा करके।।

घट को नित भरते रहना
मधु-स्नेह-सुधा से रीते।
जीवन भर हरते रहना
दलितों-दुःखितों के दुःख को।।

है तुममें अतुलित क्षमता
दुर्गम जलनिधि तरने की।
तव मानस नहीं सहमता
पीड़ा-पर्वत चढ़ने में।।

भ्रातृत्व भाव को भरना
तुम स्वर्ण-भूमि पर जाकर।
सबको समलङ्कृत करना
हो सुखद सुसंस्कृत जीवन।।

तुम अपना हाथ बँटाना
निबलों के सुख में, दुःख में।
सबका सन्त्रास मिटाना
हो सहज सभी का जीवन।।

संस्कृति की बेलि चढ़ाना
तुम हर मानव के मन पर।
आर्यों की कीर्ति बढ़ाना
कम्बुज की कनक-धरा पर।।"

कम्बुज के प्रति थी पीड़ा
करुणार्द्र हृदय में गुरु के।
तब उठा लिया था बीड़ा
मैंने कम्बुज जाने का।।

साष्टाङ्ग प्रणाम किया था
मैंने श्रद्धानत होकर।
स्नेहिल आशीष दिया था
कुलपति ने अन्तर्मन से।।

मेरा उत्साह बढ़ाया
गुरुदेव गये कुटिया में।
था मुझको धैर्य बँधाया
मेरी आँखें भर आयीं।।

स्वाती के पास गया फिर
भारी मन सजल नयन मैं।
शाश्वत अनुराग रहे चिर
यह अभिलाषा लेकर के।।

खिल गया हृदय स्वाती का
वह मुझे देखकर पुलकी।
वह रूप प्रणय-माती का
मैं अब तक भूल न पाता।।

हम दोनों के तन-मन में
जो प्रणय सुगन्धि भरी थी।
वह सुरभि विन्ध्य-कानन में
सबको पुलकित करती थी।।

की मैंने भारी मन से
कम्बुज-यात्रा की चर्चा।
सचमुच मेरे जीवन से
सब सुखैषणा थी भागी।।

सुन मेरा लक्ष्य निराला
थी विचलित हुई न स्वाती।
उसने फूलों की माला
अर्पित कर मुझे विदा दी।।

थी मुझसे बोली स्वाती
"सुन लो! मेरे जीवन-धन।
इस मधुर प्रणय की थाती
रक्खूँगी पूर्ण सुरक्षित।।

मैं यहीं पड़ी रह कर के
जन-सेवा-व्रत पालूँगी।"
चुप हुई यही कह कर के
भर अन्तर्द्वन्द्व चला मैं।।

वह मुझे भेजने आयी
उस आश्रम की सीमा तक।
अब भी रहतीं ललचायीं
आँखें उसके दर्शन को।।

□□

प्रत्यूष-काल का अभिनव
सौन्दर्य धरा पर बिखरा।
स्वागत करता खग कलरव
शुभ शकुन हुए मङ्गलमय।।

था भाव-सिन्धु लहराया
चेतना भरी थी नूतन।
था अमृत-कलश भर लाया
मलयानिल मचल-मचल कर।।

रख लक्ष्य हृदय में पावन
कम्बुज की ओर चला मैं।
थे दृश्य सभी मन भावन
अनजान पन्थ था दुर्गम।।

सब अपने छूट रहे थे
घाटी-सरिता-गिरि-कानन।
सब सपने टूट रहे थे
जागरण काल था आया।

सहयात्री मिला न कोई
एकाकी पैदल चलता।
सुख की घड़ियाँ थी सोयीं
उत्साह भरा था मन में।।

छक जाता था मन मेरा
प्राकृतिक छटा-रस पीकर।
थक जाता था तन मेरा
मग में पग बढ़ते जाते।।

गुरु का आशीष सबल था
नित देता मुझे सहारा।
पौरुष भी भरा प्रबल था
भगती थी दूर निराशा।।

जब मुझे हिचकियाँ आतीं
तब आँखें नम हो जातीं।
है याद कर रही स्वाती
मैं यह सोचा करता था।।

मुझको साहस देता था
स्वाती का सबल समर्थन।
गिरि-शिखर लाँघ लेता था
वह शक्ति मिली थी उससे।।

जब कम्बुज-भूमि मिलेगी
सङ्कल्प पूर्ण तब होगा।
स्वाती-उर-कली खिलेगी
शुभ समाचार को पाकर।।

अभिवादन विन्ध्याचल का
अभिनन्दन विन्ध्य-विपिन का।
कर वन्दन सरिता-जल का
मैं अविरल बढ़ता जाता।।

यादें आतीं गुरुकुल की
ऋषिकुल की यादें आतीं।
आतीं शिक्षा-सङ्कुल की
सब गतिविधियों की यादें।।

जो यज्ञ-कर्म होता था
गुरु के पावन आश्रम में।
सबकी यादें ढोता था
मन की शोभन शिविका में।।

उपवन की कोमल कलियाँ
बसतीं मेरी यादों में।
गुञ्जनरत भ्रमरावलियाँ
मन को झकझोर रही थीं।।

वन-पथ पर चलते-चलते
रेवा-तट पर मैं पहुँचा।
लहरों को सतत मचलते
था अधिक निकट से देखा।।

ले रोली-अक्षत-चन्दन
ऋषिगण प्रातः वेला में।
करते थे पूजन-वन्दन
था दृश्य सुहाना लगता।।

उस सरिता में करती थीं
कुछ कामिनियाँ जल-क्रीड़ा।
सबके मन को हरती थीं
उनके तन की मादकता।।

बालाओं के सैनों को
जब देख मदन मुसकाता।
अपने दोनों नयनों को
यम-नियम बन्द कर लेते।।

थी अभिलाषा ललचायी
उन अधरों को छूने को।
थी रुन झुन करती आयी
प्राची निज माँग सजाये।।

जो अङ्गराग धुल जाते
थे प्रमदाओं के तन से।
सरिता में वे घुल जाते
ऊर्मियाँ सुगन्धित होतीं।।

था मन्द पवन इठलाता
लेकर वह सुरभि निराली।
मन था सुरभित हो जाता
संस्पर्श पवन का पाकर।।

अन्तर्मन को छू जाती
सरिता-तट की वह सुषमा।
तब स्वाती की सुधि आती
मैं ध्यानमग्न हो जाता।।

स्वाती झङ्कृत कर जाती
उर-वीणा के तारों को।
यादों का घट भर लाती
जब मन प्यासा हो जाता।।

पीड़ा सहचरी बनी थी
पग में छाले पड़ जाते।
यात्रा-अनुभूति सनी थी
अतुलित उत्साह भरा था।।

मन में सङ्कल्प भरा था
बस लक्ष्य दिखायी पड़ता।
अवरोधों का पहरा था
बाधित न मुझे कर पाता।।

थी दिखी पार्थ को जैसे
चिड़िया की आँख अकेली।
कम्बुज की धरती वैसे
मुझको दिखती थी केवल।।

तन-मन में ताकत आयी
यात्रा बन गयी निराली।
थी मुझको पड़ी दिखायी
फिर शोण नदी की धारा।।

फिर पार उसे भी करके
मैं और बढ़ गया आगे।
मन में सत्साहस भरके
चलता जाता मस्ती में।।

रातें कटती थीं वन में
दिन कटते चलते-चलते।
इच्छा थी मेरे मन में
कम्बुज-धरती मिल जाये।।

जन-जन का दुःख हरने का
पावन सङ्कल्प भरा था।
जग मङ्गलमय करने का
व्रत मैंने ठान लिया था।।

मुझको पुलकित करने को
फिर गङ्गा पड़ी दिखायीं।
सुरसरिता को तरने को
मैं तट तक था जा पहुँचा।।

अर्चन-पूजन-वन्दन कर
साष्टाङ्ग प्रणाम किया था।
गङ्गा का अभिनन्दन कर
आज्ञा ले पार किया था।।

देखी गङ्गा की शोभा
उस पार उतर कर मैंने।
मेरा अन्तर्मन लोभा
लहरों की निर्मल छवि पर।।

अनगिनत फूलमालाएँ
सुषमा को द्विगुणित करतीं।
जल-क्रीड़ा-रत बालाएँ
थीं रति को लज्जित करतीं।।

मन को उत्साहित करतीं
रह-रह कर उन्नत लहरें।
थीं शौर्य अपरिमित भरतीं
तन-मन में गङ्गा देवी।।

जननी गङ्गा कल्याणी
मङ्गलमय पन्थ दिखाती।
कल-कल ध्वनि वाली वाणी
आशीष बिखेर रही थीं।।

गौरव-गाथाएँ कहती
गङ्गा आँखों की देखी।
साक्षी अतीत की बहती
गति-प्रगति मन्त्र दुहराती।।

रुकने का नाम न लेती
निज धुन में बहती जाती।
पथिकों को ढाढ़स देती
वह लक्ष्य-सिद्धि की देवी।।

मेरा मन-सुमन खिला था
गङ्गा के पावन तट पर।
फिर पाटलिपुत्र मिला था
कुछ और दूर जाने पर।।

था पाटलिपुत्र अलङ्कृत
पाटल-सुगन्धि थी आयी
मेरा अन्तर्मन झङ्कृत
छवि-नटी नृत्य करती थी।।

अम्बर को चूम रही थीं
चोटियाँ सभी भवनों की।
मस्ती में झूम रही थीं
महलों की सभी कलाएँ।।

जन-सेवारत हर प्राणी
आचार-विचार समुन्नत।
विकसित संस्कृति कल्याणी
था पाटलिपुत्र निराला।।

हर मन में प्रेम भरा था
सब थे अनन्य सहयोगी।
साक्षात स्वर्ग उतरा था
ज्यों पाटलिपुत्र धरा पर।।

सब में थी करुणा-ममता
सब में शुचि स्नेह भरा था।
सबमें दिखती समरसता
वैभव था स्वर्ग सरीखा।।

थे वैद्य चतुर दुःखहारी
निःशुल्क औषधालय थे।
थे नियम सर्वहितकारी
शासन-प्रबन्ध उत्तम था।।

पथ पर तरुओं की छाया,
पथिकों को कष्ट न होता।
था वसुन्धरा पर छाया
सुख का साम्राज्य मनोरम।।

था सबको सुख पहुँचाता
वह जम्बू-द्वीप हमारा।
सुख-दुःख से सबका नाता
थे सभी उदार हृदय के।।

जम्बू का कण-कण प्यारा
था मार्ग प्रशस्त बनाता।
मङ्गलमय प्रात हमारा
चैतन्य हमें करता था।।

थे प्रस्तार खण्ड निराले
कमनीय कन्दराएँ थीं।
लगता था डेरा डाले
हो कोई चतुर चितेरा।।

गाथा अतीत की गाता
था पाटलिपुत्र निरन्तर।
इतिहास मुखर हो जाता
संवेदनशील हृदय से।।

श्रद्धानत वन्दन करके
उस पाटलिपुत्र धरा को।
निज लक्ष्य हृदय में धर के
चल पड़ा और आगे को।।

□□

थे सघन विजन कानन में
पीपल-पाकड़-गूलर तरु।
उत्साह भरा था मन में
थकने का नाम न लेता।।

झूमते कहीं थे बरगद
थे कहीं अशोक सुशोभित।
अन्तर्मन होता गद्‌गद
दिखते तमाल तरु अनगिन।।

चन्दन-वन से थीं आतीं
कुछ शीतल मन्द हवाएँ।
मेरे मन को थीं भाती
वनदेवी की वह शोभा।।

कचनार कहीं पर खिलते
तो कहीं सप्तपर्णी थी।
सुरभित उपवन थे मिलते
मन पुलकित हो जाता था।।

आकर्षित करता मन को
था नालन्दा का वैभव।
देखा मैंने जन-जन को
साधना-भूमि में रमते।।

आचार्य शिष्यगण करते
थे पाठन-पठन निरन्तर।
थे सब अगणित गुण भरते
था शिक्षा केन्द्र मनोरम।।

चहूँ दिशि चहार दीवारी
सुन्दर मजबूत बनी थी।
उत्तम प्रबन्ध सुखकारी
अति आकर्षक परिसर था।।

बैठा रहता जो पण्डित
था मुख्य द्वार पर जमकर।
रहता था महिमा मण्डित
वह लेता कड़ी परीक्षा।।

जो शिष्य सफल होते थे
वे ही प्रवेश पाते थे।
जो बुद्धि-प्रबल होते थे
वे छात्र वहाँ पढ़ते थे।।

पढ़ने आया करते थे
बहु छात्र विविध देशों से।
विद्या पाया करते थे
सुन्दर शिक्षालय में सब।।

चिन्तन चलता रहता था
ऊँचे भवनों के भीतर।
अविरल जलता रहता था
उन्नति का दीप अलौकिक।।

सबको शिक्षा कल्याणी
मिलती थी उस परिसर में।
थी अश्वघोष की वाणी
गूँजा करती हर मन में।।

अध्ययन केन्द्र था न्यारा
नालन्दा का वह परिसर।
दर्शन-चिन्तन की धारा
बहती रहती घर-घर में।।

उपदेश दिये थे अपने
जब बुद्ध वहाँ थे आये।
सुन्दर अतीत के सपने
नालन्दा दुहराता था।।

निशि-दिवस बुद्ध की गाथा
पावन धरती गाती थी।
था हर यात्री का माथा
स्वयमेव वहाँ झुक जाता।।

नालन्दा ने उपजाया
था सारिपुत्र से सुत को।
अन्तार्मन था हरषाया
अवलोक प्रमद-वन शोभा।।

था बुद्ध-विहार सलोना
नालन्दा में अति न्यारा।
धरती का कोना-कोना
बुद्धोपदेश से मण्डित।।

संस्थिर होते अभ्यन्तार
प्रातः समस्त श्रमणों के।
करते थे पाठ निरन्तर
सब भिक्षु बुद्ध वाणी का।।

"सब बुद्ध-शरण में जायें
सब सङ्घ-शरण में जायें।
सब करुणा को अपनायें
सब क्षमाशील बन जायें।।

हम सब विलास को त्यागें
नर्तन-वादन से वञ्चित।
सब राग-द्वेष से भागें
संयम के व्रत को पालें।।

अज्ञान-तिमिर छँट जाये
वैभव से दूर रहें हम।
सब भव-बन्धन कट जाये
हो लोभ-रहित अन्तर्मन।।

जग को मङ्गलमय कर दें
भर ज्ञान-प्रकाश निराला।
सुख-शान्ति जगत में भर दें
चैतन्य सभी हो जायें।।

वासना-रहित हो जाये
सम्प्रति हर मानव का मन।
दुःख से छुटकारा पाये
जग अनासक्त हो करके।।

जीवन-धारा को मोड़ें
कल्याण-मार्ग अपनायें।
सब जन हिंसा को छोड़ें
तन-मन से और वचन से।।

संयमित बने हर प्राणी
आचरण पवित्र बनाये।
ऋजु-मधुर-सत्य हो वाणी
जीवन समरस बन जाये।।

छल-दम्भ-मोह को त्यागे
जीवन-पथ सरल बनायें।
कामोपभोग से भागें
मदिरा की ओर न देखे।।

निन्दा का त्याग करें सब
निन्दा अनर्थ की जननी।
मन में अनुराग भरें सब
सब लोग सदाचारी हों।।

क्रोधाग्नि न जलने पाये
यह क्रोध पतन की जड़ है।
आलस्य न पलने पाये
गति-प्रगति विघ्न विरहित हो।।

ईर्ष्या, घमण्ड की घरनी
है लोभ महापातक अघ
है होती काली करनी
नित काम-राग सेवन से।।

सात्विक आहार करें सब
फल-फूल-मूल अन्नोदक।
जग में आनन्द भरें सब
साधना पूर्ण हो सबकी।।"

श्रद्धा से शीश झुकाया
उस शुद्ध-बुद्ध-धरती को।
मैंने पग और बढ़ाया
नालन्दा के कुछ आगे।।

कुछ दूर झलकती थी जो
वह नदी सदानीरा थी।
बन सुधा छलकती थी जो
उसका जल पिया मुदित मन।।

थी वेत्र-लता लहराती
छिट फुट गीले कूलों पर।
गज-शक्ति विवश हो जाती
पड़ सरिता के भँवरों में।।

पर्वत की चञ्चल बाला
वह खूब सजी सँवरी थी।
बिखरा चहूँ ओर उजाला
चन्द्रिका छटा छहरी थी।।

थे तट पर शोभा पाते
कितने महलों के खँडहर।
भग्नावशेष दुहराते
अपना इतिहास पुराना।।

अति कमनीया कल्याणी
दिखती थीं कई गुफाएँ।
थी बुद्धदेव की वाणी
जिनके प्रस्तर-लेखों में।।

सरिता-तट मुझको भाया
कुछ समय वहाँ मैं ठहरा।
विश्राम किया, बल पाया
मिट गयी श्रान्ति थी तन की।।

श्रावणी-निशा थी आयी
लेकर रिमझिम बरसातें।
थी प्रलय घटा घहरायी
मन में बिजली कौंधी थी।।

सरिता की ऊँची लहरें
तरु-शिखरों को छूने को।
उर-भाव भरे थीं गहरे
मैं होता पानी-पानी।।

तटिनी के गहरे जल में
उतरा, कर नमन वरुण को।
तिरकर अगले ही पल में
उस पार तुरत जा पहुँचा।।

फिर आगे बढ़ता जाता
मग में अपने डग भरते।
काँटों पर चल मुसकाता
दुःख को सुख समझा करता।।

थी शक्ति भरी चाहों में
पद कहीं न रुक पाते थे।
वन की सँकरी राहो में
गिरि-गुफा और खाई में।।

पहुँचा था चलते-चलते
फिर नदी स्वर्णकोशा तट।
आशा के दीपक जलते
मन के मन्दिर में अविरल।।

मैं एक पथिक अलबेला
गुरु का सम्बल था सँग में।
हँस पथ-विघ्नों को झेला
खुश हुई स्वर्णकोशा थी।।

पथ-दर्शक मिल जाते थे
जब कहीं भटक जाता था।
पग कहीं न रुक पाते थे
निज धुन में बढ़ता जाता।।

□□

मैं बस चलता ही जाता
अति विकल पवन की नाईं।
अन्तर्मन रहता गाता
तन में पुलकन भर जाती।।

निर्झर की तान निराली
अग-जग को मोह रही थी।
थी आसमान की लाली
मेरे मन को रँग जाती।।

वनराज दहाड़ रहा था
दिखती अद्भुत वन-शोभा।
गज कर खिलवाड़ रहा था
मृग-यूथ कुलाँच रहे थे।।

थे मधुमक्खी के छत्ते
वृक्षों पर शोभा पाते।
पुलकित थे पत्ते-पत्ते
पुलकित थी डाली-डाली।।

अहि थे आनन्द मनाते
घन सङ्कुल लता-वलय में।
थे बल खाकर इठलाते
नागिन का चुम्बन पाकर।।

कानन में डाले डेरा
रजनी रानी अँगड़ायी।
छाया था निविड अँधेरा
निर्जन वन में सन्नाटा।।

मैं फिरता मारा-मारा
उस दुर्गम महाविपिन में।
था केवल एक सहारा
बस मुझको जगदम्बा का।।

उस कामरूप कानन में
मैं अविरल विचर रहा था।
यह उत्कण्ठा थी मन में
कम्बुज तक कैसे पहुँचू??

कामना करेंगी पूरी
मेरी कामाख्या देवी।
कम हो जायेगी दूरी
यात्रा अति सरल बनेगी।।

देवी का दर्शन करके
उनकी अनुकम्पा पाया।
मानस में श्रद्धा भर के
रूक गया वहाँ कुछ दिन तक।।

थे चिन्ता में दिन बीते
चिन्ता में बीती रातें।
घट नहीं आस के रीते
विश्वास अटल था मेरा।।

चांदनी खिली अलबेली
गिरि-गह्वर-सर में उतरी।
करती थी वह अठखेली
वन-झुरमुट में लुक छिपकर।।

रजनी रानी मतवाली
जब लेती थी अँगड़ाई।
वन-प्रान्तर होता खाली
तब स्वाती की सुधि आयी।।

थी उसके मुख की छाया
दिखती शशाङ्क में मुझको।
था प्रणय-सिन्धु लहराया
तब मेरे प्यासे उर में।।

जैसी थी मेरी स्वाती
वह चन्द्र-प्रभा थी वैसे।
थी ढाढ़स मुझे बँधाती
मैं छवि अवलोक रहा था।।

इस भाँति चाँदनी रातें
कुछ समय कटीं उस वन में।
क्या कहूँ पुरानी बातें
फिर कृष्णपक्ष था आया।।

है मुझको याद अभी भी
वह रात अमावस्या की।
भूलूँगा नहीं कभी भी
घटना उस गहन निशा की।।

था मारुत मन्थर बहता
ले गन्धि निशारानी की।
गाथाएँ गाता रहता
वह मधु-माधव-मदिरा की।।

लुढ़का दी तम की गगरी
जब कालचक्र ने आकर।
थी कामाख्या की नगरी
तब डूबी महा निबिड में।।

पावक चहूँ ओर जलाकर
हिंसक पशुओं के डर से।
मन का सन्ताप भुलाकर
विश्राम हेतु था लेटा।।

हलकी सी निद्रा आयी
मुझको मन्दिर परिसर में।
सद्यः झुरकी पुरवाई
शीतोपहार ले करके।।

था कोई पुरुष अचानक
आया फिर मेरे आगे।
था उसका रूप भयानक
थीं सिंह सरीखी आँखें।।

कन्धे पर धनुष निराला
तरकस में तीर भरे थे।
मस्तक पर दिव्य उजाला
मुखण्डल तेज भरा था।।

शुचि पान पात्र था कर में
जो नर-कपाल से निर्मित।
देखा मैंने क्षणभर में
कापालिक समझ डरा मैं।।

मेरा अन्तर्मन काँपा
वह रौद्ररूप जब देखा।
उसने मेरा भय भाँपा
मेरे सिर को सहलाया।।

मुझसे अति स्नेहिल स्वर से
वह भद्र पुरुष फिर बोला।
"आये हो तात किधर से
अपना वृत्तान्त सुनाओ।।"

निज नाम-गोत्र बतलाकर
मैंने परिचय दे डाला।
वार्ता में चित्त लगाकर
उसने सुन ली मम गाथा।।

वह बहुत हुआ था हर्षित
सुनकर मेरी यात्रा को।
मुझको करता आकर्षित
उसका व्यक्तित्व निराला।।

ऋषि तुल्य देखकर काया
हो गया प्रभावित था मैं।
श्रद्धा से शीश झुकाया
फिर हाथ जोड़कर बोला।।

गुरुदेव! आप कह डालें
विस्तार सहित निज गाथा।
अपना प्रिय मुझे बनालें
सत्पन्थ मुझे दिखलायें।।

अपने सञ्चित अनुभव का
कुछ लाभ मुझे भी दे दें।
व्यवधान सकल इस भव का
हट जाय आप वह बल दें।।

सुन करके विनती मेरी
वे आर्य प्रवर थे बोले।
"है तुमसे प्रीति घनेरी
सत्पात्र समझता तुमको।।

कहता अनकही कहानी
कौण्डिन्य! सुनो धर धीरज।
छलका नयनों में पानी
दुःखमय अतीत है मेरा।।

प्रिय! मैं अश्वत्थामा हूँ
मैं ऋषि हूँ, योद्धा भी हूँ।
मैं चर्चित हंगामा हूँ
विख्यात महाभारत का।।

मैं द्रोण-तनय हतभागी
है कृपी हमारी जननी।
फिरता हूँ बन बैरागी
अतिकरुण कथा है मेरी।।

निर्धन थे तात हमारे
द्रोणी भर अन्न न जुरता।
निशिदिन चिन्ता के मारे
वे विकल रहा करते थे।

धन-धान्य मिलेगा कैसे
यह सोच व्यथित रहते थे।
कुल-कुसुम खिलेगा कैसे
उस पथ को खोज रहे थे।।

कुछ लोग सुनाया करते
जमदग्नि-तनय की गाथा।
जो दान लुटाया करते
अत्यन्त उदार हृदय से।।

उनके समीप जाने की
इच्छा थी पूज्य पिता की।
जा पहुँचे धन पाने की
लालसा हृदय में ठाने।।

थे परशुराम समलङ्कृत
अति दिव्य महेन्द्राचल पर।
ओङ्कार निरन्तर झङ्कृत
होता था वहाँ चतुर्दिक्।।

निर्धूम आग्नि हो जैसे
आलोक पुञ्ज अति पावन।
ब्रह्मर्षि तेज था वैसे
साधना-भूमि पर भासित।।

साष्टाङ्ग प्रणाम किया था
मेरे श्रद्धेय पिता ने।
उनका मन भाँप लिया था
जमदग्नि-तनय ने सत्वर।।

तब बोल पड़े भृगुनन्दन
"हे द्विज! तुम क्यों आये हो?
हे भरद्वाज कुल चन्दन!
सङ्कोच त्याग कर बोलो।।"

हर्षातिरेक भर आया
इस भाँति तात फिर बोले।
"याचना हेतु मैं आया
हे! परम उदार मनस्वी।।

जग भर को बाँट रहे हैं
अविरल अपनी करुणा को।
निज यश से पाट रहे हैं
प्रभु! आप अभाव-गुफा को।।"

धन पाने की धुन भारी
जब परशुराम ने देखा।
कुछ सोच अमङ्गलहारी
वे पूज्य पिता से बोले।।

"सब वैभव बाँट चुका हूँ
धन तुमको दे न सकूँगा।
निर्धनता काट चुका हूँ
अब तक अनेक विप्रों की।।

मैं नहीं निराश करुँगा
हे विप्र-तनय अब तुमको।
तुममें वह शौर्य भरुँगा
जो हरे तुम्हारे दुःख को।।

शस्त्रास्त्र-ज्ञान की विधियाँ
सारी तुमको दे दूँगा।
सब धनुर्वेद की निधियाँ
अब तुमको मिल जायेंगी।।"

भृगुनन्दन ने करवायी
साधना धनुर्विद्या की।
थी पूज्य पिता ने पायी
इच्छित विद्या भार्गव से।।

गिनते रहते थे तारे
जब पूज्य पिता थे लौटे।
पीड़ित, अभाव के मारे
होता परिवार हमारा।।

दुःख में मम शैशव बीता
संघर्षपूर्ण यह जीवन।
अनुभव है सुख से रीता
मैं नहीं काल से हारा।।

था निर्धनता के मारे
मुझको न दूध मिल पाता।
बालक पड़ोस के सारे
दिखलाकर दूध चिढ़ाते।।

कह दुग्ध मुझे फुसलाया
आटे का घोल दिखाकर।
मुझको वह घोल पिलाया।
कुछ बच्चों ने मुसकाकर।।

था दूध समझ पी डाला
मैने वह घोल मुदित मन।
था उसका स्वाद निराला
कुछ भेद न ज्ञात मुझे था।।

था हृदय पिता का टूटा
वह दृश्य देख अकुलाये।
था निर्धनता ने लूटा
गुण की अमूल्य निधियों को।।

दुर्दिन ने था झकझोरा
अन्तस्तल पूज्य पिता का।
साहस कर धैर्य बटोरा
सदुपाय खोजने निकले।।

थी याद द्रुपद की आयी
जो थे उनके सहपाठी।
देखें उनकी पहुनाई
सोचा यह पितृचरण ने।।

निज बाल सखा से मिलने
फिर वे पाञ्चाल सिधारे।
लग गया अचानक हिलने
तब स्वाभिमान अन्तस् का।।

प्रभुता के मद में फूले
थे द्रुपद दिखे बदले से।
मित्रता पुरानी भूले
अपमान किया था उनका।।

था सहन नहीं हो पाया
अपमान पिता को मेरे।
सत्वर विचार गहराया
समुचित बदला लेने का।।

है लम्बी बहुत कहानी
प्रियवर! क्या तुम्हें सुनाऊँ?
मेरे नयनों का पानी
है अब तक सूख न पाया।।

फिर पूज्य पिताश्री आये
गङ्गासुत से मिलने को।
सम्मान अनोखा पाये
थे तात हस्तिनापुर में।।

थे भीष्म पितामह हर्षित
मिलकर शस्त्रज्ञ प्रवर से।
थे हुए बहुत आकर्षित
पाकर व्यक्तित्व निराला।।

"पूरी होगी हर इच्छा"
थे भीष्म तात से बोले।
"दें धनुर्वेद की शिक्षा
गुरु द्रोण! राजपुत्रों को।।

आचार्य प्रवर! स्वीकारें
प्रस्ताव हमारा कृपया।
शिष्यों को आप सँवारें
इन सबको योग्य बनायें।।

शासन की सब सुविधाएँ
हैं सुलभ आपको गुरुवर।
सर्वथा आप अपनाएँ
सब राजकुमारों को अब"।।

कौरव-पाण्डव को पाकर
सन्तुष्ट तात थे मेरे।
करवाते थे निशि-वासर
अभ्यास धनुर्विद्या का।।

मैं भी शिक्षा लेता था
उन राजकुमारों के सँग।
गुरु-सा आदर देता था
मैं अपने पूज्य पिता को।।

गुरु की आँखों के तारे
सब राजकुमार बने थे।
थे शिष्य प्राणप्रिय सारे
अर्जुन से स्नेह अधिक था।।

भुजबल, उद्योग भरा था
फुर्तीलापन था अद्‌भुत।
गुरु-भक्ति-भाव गहरा था
अर्जुन में ही सर्वाधिक।।

अविरल सेवा-रत रहते
तन-मन में पूर्ण समर्पण।
झट करते, जो गुरु कहते
व्यक्तित्व बृहत अर्जुन का।।

अभ्यास सराहा जाता
साधना सराही जाती।
सर्वाधिक चाहा जाता
सच, पार्थ, द्रोण के द्वारा।।

अभ्यास सतत बाणों का
तम में भी करते अर्जुन।
था मोह नहीं प्राणों का
उनकी अनुपम प्रतिभा थी।।

दारुण अमोघ जग दाहक
दिव्यास्त्र ब्रह्मशिर देकर।
करना प्रयोग मत नाहक
आचार्य, पार्थ से बोले।।

"जागेगी प्रतिभा सोयी"
गुरु द्रोण कहा करते थे।
"तुमसे बढ़कर के कोई
होगा न धनुर्धर जग में।।"

सुनकर अर्जुन की गाथा
मैंने अश्वत्थामा से।
उत्सुकता वश पूछा था
आख्यान महाभारत का।।

क्या एकलव्य से बढ़कर
अर्जुन था महाधनुर्धर।
जो गुरु की प्रतिमा गढ़कर
बन बैठा धनुर्विशारद।।

मेरी जिज्ञासा सुनकर
अश्वत्थामा बोले थे।
भावार्थ हृदय में गुनकर
फिर कहा रहस्य उन्होंने।।

"था एकलव्य बलशाली
कर्मठ निषाद-कुल भूषण।
थी प्रतिभा मिली निराली
था लोभ धनुर्विद्या का।।

मृग-चर्म सुशोभित होता
परिपुष्ट देह पर उसकी।
सङ्कल्प बीज था बोता।
थी लगन ज्ञान-सञ्चय की।।

मैं श्रेष्ठ वीर बन जाऊँ
वह प्रतिदिन सोचा करता।
किस तरह द्रोण से पाऊँ
उपलब्धि धनुर्विद्या की।।

गुरु ओर निहारा करता
कुछ दूर खड़ा हो प्रतिदिन।
वह सदा बिचारा करता
पायें किस तरह चरण-रज।।

क्या मुझपर कृपा करेंगे
वे राज सुतों के गुरु हैं।
मुझमें चातुर्य भरेंगे
क्या अद्‌भुत शर-वर्षण का।।

मन में वह निश्चय करके
शर-चाप स्वयं का लेकर।
मानस में श्रद्धा भरके
चल पड़ा द्रोण-आश्रम को।।

जब गुरु समीप वह आया
कुछ पत्र-पुष्प लेकर के।
ज्यों कल्पवृक्ष था पाया
आचार्य-चरण दर्शन से।।

कुल का अभिधान बताया
निज नाम लिया फिर उसने।
उन्नत सिर विनत झुकाया
गुरुवर के पद-पद्मों में।।

करुणा-सागर लहरायें
वह बोला श्रद्धानत हो।
"मुझको अभ्यास करायें
गुरुदेव!, धनुर्विद्या का।।"

देखा जिज्ञासु-प्रवर को
दृढ़ सङ्कल्पित तन-मन था।
विश्वास हुआ गुरुवर को
यह अधिक पार्थ से प्रातिभ।।

हो और नहीं इस जग में
अर्जुन सा बढ़कर कोई।
था स्नेह भरा रग-रग में
उर में वात्सल्य भरा था।।

यदि वह शिक्षा पायेगा
इन राजसुतों के सँग में।
अर्जुन से बढ़ जायेगा
है इसको दूर भगाना।।

"हो नहीं योग्य अधिकारी"
क्रोधित होकर गुरु बोले।
"आश्रम की रीति हमारी
कुछ तुमको ज्ञात नहीं है।।

तुम मुझसे पा न सकोगे
कुछ ज्ञान धनुर्विद्या का।
उस पथ पर जा न सकोगे
हैं राजपुत्र जिस मग पर।।

तुम चले यहाँ से जाओ
कुल-कर्म करो जाकर के।
मत स्वर्णिम समय गँवाओ
पौरुष पर करो भरोसा"।।

उसने गुरु को स्वीकारा
गुरु ने उसको ठुकराया।
था खोजा एक सहारा
फिर अस्त्र-ज्ञान पाने का।।

नव रवि की किरणें आयीं
सरिता के पावन तट पर।
मिट्टी की मूर्ति बनायी
आचार्य द्रोण की उसने।।

अभ्यास सतत था करता
कर गुरु-प्रतिमा को प्रणमन।
केवल यह इच्छा धरता
बन जाऊँ धनुर्विशारद।।

मृगया हित एक दिवस थे
कौरव-पाण्डव सब निकले।
सबके सुन्दर तरकस थे
सब अपने धनुष सँभाले।।

बलयुक्त श्वान था चलता
उन राजसुतों के पीछे।
आगे बढ़ गया टहलता
कुछ दूर अकेले वन में।।

कानन में शोर मचाया
वह लगा भूँकने ऊँचे।
शर-कौतुक एक दिखाया
तब एकलव्य ने सहसा।।

तीरों को साध चलाया
कुक्कुर स्वर सुनकर उसने।
चुप उसको तुरत कराया
भर उसका मुख बाणों से।।

वह कुक्कुर भागा-भागा
सबके सम्मुख था आया।
सबमें कौतूहल जागा
शर-कौशल देख निराला।।

वे लगे सोचने मन में
आश्चर्य-चकित हो करके।
है धनुविशारद वन में
क्या हमसे बढ़कर कोई??

सबमें उत्साह नया था
सब लोग विकल दिखते थे।
कुत्ता जिस ओर गया था
उस ओर चकित हो निकले।।

मृत्तिका-मूर्ति के सम्मुख
अभ्यास बाण-विद्या का।
था एक तरुण पाता सुख
दिख पड़ा साधना करता।।

फिर पूछा परिचय उसका
उन्नत पक्ष्मों से देखा।
"तू! कुशल शिष्य है किसका
लगता है वीर धनुर्धर"।।

श्रद्धा से शीश झुकाया"
गुरु द्रोण-मूर्ति को उसने।
करके सङ्केत बताया
हैं यही श्रेष्ठ गुरु मेरे।।

"इस कानन में रहता हूँ
मैं एकलव्य हूँ श्रीमन् ।
अभ्यास किया करता हूँ,
अनवरत धनुर्विद्या का"।।

उर में ईर्ष्यानल जलता
लख एकलव्य की क्षमता।
उच्छ्वास उष्ण था चलता
कुछ नहीं समझ में आया।।

फिर गुरु समीप वे आये
उनमें चिन्ता थी व्यापी।
सबके आनन मुरझाये
उठती थी हूक हृदय में।।

अर्जुन ने किया निवेदन
"गुरुवर! गुत्थी सुलझाएँ।
है हुआ बहुत बोझिल मन
शर-कौशल देख अनोखा"।।

था जहाँ वीर व्रतधारी
वह एकलव्य अभ्यासी।
सद्‌गुणी सहज संस्कारी
था जहाँ, वहीं गुरु पहुँचे।।

गुरुवर ने जाकर देखा
अपनी मिट्टी की प्रतिमा।
उभरी विस्मय की रेखा
गुरु द्रोण-हृदय में अद्‌भुत।।

जब एकलव्य ने पाया
पावन दर्शन गुरुवर का।
"है धन्य हुई मम काया"
वह झट प्रणाम कर बोला।।

"था शिष्य न अपना माना
गुरुदेव! आपने मुझको।
लेकिन मैंने व्रत ठाना
गुरु-मूर्ति बनायी मैंने।।

श्रद्धा-संयुत कर डाली
प्रतिमा की प्राण-प्रतिष्ठा।
शर-विद्या मैंने पा ली
गुरु-मूर्ति-कृपा के बल पर।।

आचार्य, आपको माना
मैंने अपना परमेश्वर।
चाहता आपसे पाना,,
आशीष आज कुटिया पर।।

जब उसकी अद्‌भुत क्षमता
देखा आचार्य प्रवर ने।
सोचा कि किसी से समता
इसकी न, धनुर्विद्या में।।

मेरी प्रतिमा को गढ़कर
है एकलव्य ने पाया।
प्रिय शिष्य पार्थ से बढ़कर
कितना विचित्र शर-कौशल।।

अर्जुन के प्रति गुरु-मन में
फिर पक्षपात भर आया।
जैसे शीतल चन्दन में
अगणित विषधर लिपटे हों।।

"तुम शर-साधक हठ-योगी"
गुरु, एकलव्य से बोले।
"शर-विद्या सार्थक होगी
जब गुरु-दक्षिणा मिलेगी।।"

"गुरुदेव! आपको क्या दूँ"
तब एकलव्य यह बोला।
"अपना सर्वस्य लुटा दूँ
आदेश आपका पाऊँ।।

"यदि काट अँगूठा दोगे
दाहिने हाथ का अपने।
गुरु-भक्त कहे जाओगे
इस जग में सबसे बढ़कर।।"

चुपचाप दाहिने कर का
अङ्गुष्ठ काट दे डाला।
सम्मान किया गुरुवर का
यश एकलव्य का फैला।।"

है याद मुझे फिर आता
वह समर महाभारत का।
जब था भ्राता का भ्राता
बन गया भयङ्कर द्रोही।।

वह महासमर की गाथा
कौण्डिन्य पता है तुमको।
वध कैसे किया गया था
धोखे से पूज्य पिता का।।

दारुण सन्ताप हुआ था
था कुपित पितृ-हत्या से।
तब मुझसे पाप हुआ था
द्रौपदी-सुतों को मारा।।

पुत्रों का मरना सुनकर
द्रौपदी गिरीं भहराकर।
कुछ क्षण में संस्थिर होकर
वह धर्मराज से बोली।।

"अद्‌भुत मणि एक निराली
गुरु-सुत के मस्तक में है।
हृदयाग्नि न बुझने वाली
उसका वधकर मणि लाओ।।"

उसने निज व्यथा सुनायी
फिर भीमसेन से रोकर।
"अब मृत्यु निकट है आयी
उस कुल-नाशक गुरु-सुत की।।"

था उस पल शीघ्र मँगाया
कह भीमसेन ने रथ को।
था धीरज बहुत बँधाया
फिर अग्रज ने अर्जुन को।।

दिव्यास्त्र साथ में लेकर
सब योधा रथ में बैठे।
उड़ती जय-ध्वजा फहर कर
सारथी बने थे कान्हा।।

तन-मन में कम्पन आया
जब मैंने सबको देखा।
था अपना रूप दिखाया
साक्षात् मरण ने मुझको।।

है वही घड़ी अब आयी
ब्रह्मास्त्र प्रयोग करूँ मैं।
मैंने फिर सींक उठायी
कर दिव्य अस्त्र का चिन्तन।।

निष्पाण्डव जग हो जाये
सङ्कल्प किया कुश लेकर।
जिससे हलचल मन जाये
उस ब्रह्म-अस्त्र को फेंका।।

यदुनन्दन ने समझाया
"यह अस्त्र अमोघ भयङ्कर।"
था मन में पाप समाया
मैं सुन सकता था कैसे??

दिखती ज्वाला ही ज्वाला
धू-धू कर लपटें निकलीं।
बन वासुदेव रखवाला
उस क्षण अर्जुन से बोले।।

"था जो ब्रह्मास्त्र बताया
आचार्य द्रोण ने तुमको।
अब उचित समय है आया
उसका सन्धान करो तुम।।"

सुन कृष्ण-कथन तज संशय
अर्जुन मुझसे बोले थे।
"है धनुर्वेद मङ्गलमय
हो निष्फल अस्त्र तुम्हारा।।"

घातक ब्रह्मास्त्र चलाया
ऐसा कहकर अर्जुन ने।
था प्रलयानल भर आया
दोनों अस्त्रों से जग में।।

भीषण गर्जन ध्वनि आयी
टकराने से अस्त्रों के।
तब उल्काएँ थीं धायीं
सन्तप्त निलय से अनगिन।।

ज्यों अन्त सर्ग का आया
थी काँप रही तब धरती।
था जन समूह चिल्लाया
"सब प्राणी मर जायेंगे।।"

हम दोनों को समझाया
भगवान् व्यास ने आकर।
था साधन एक बताया
इस संसृति के बचने का।।

"तुम दोनों के सम्मुख हो
सम्पूर्ण लोक का मङ्गल।
जग जिससे पाता सुख हो
वह काम तुम्हें करना है।।"

अब तुम दोनों लौटाओ
घातक दैवी अस्त्रों को।
युग-द्रोही मत कहलाओ"
जग के विनाश को रोको।।

अर्जुन ने लौटाया था
निज घोर अस्त्र को तत्क्षण।
पर बुला नहीं पाया था
मैं अपना अस्त्र भयङ्कर।।

यह अस्त्र अमोघ भयङ्कर
है अग्नि-मन्त्र से मन्त्रित।
पाण्डव-प्राणों को हरकर
यह हो जायेगा निष्प्रभ।।

उत्तरा-गर्भ भहराया
फिर ब्रह्मायुध से मेरे।
मैं पाप-कुम्भ भर लाया
उस गर्भ-पात को करके।।

मर गया, प्राण, फिर आया
आशीष किसी ऋषि का था।
विधि ने कुलदीप बनाया
अति वीर परीक्षित था वह।।

सिर-मणि निकाल दे डाला
ऋषि व्यास कथन पर मैंने।
थी शान्त पार्थ उर-ज्वाला
थे तुष्ट शिरोमणि पाकर।।

कान्हा ने शाप दिया था
मुझको "शिशु-हन्ता" कह कर।
मैंने जो पाप किया था
उसका फल मिलना ही था।।

व्रण, सिर का नहीं भरेगा
"दुर्गन्धित पूय बहेगी।
तू एकाकी विचरेगा
अविरल निर्जन कानन में।।

तू इसी तरह भटकेगा
अब तीन सहस्र शरद तक।
माया में ही अटकेगा
चर्चित चिरजीवी बनकर"।।

बतलायी थी निज गाथा
अश्वत्थामा ने मुझसे।
था झुका दिया निज माथा
फिर सिर का व्रण दिखलाया।।

थे अब तक कहाँ विचरते
यह मैंने उनसे पूछा।
दिन बीते क्या क्या करते
कृपया मुझको बतलायें।।

"फिरता रहता वन-वन में"
अश्वत्थामा यह बोले।
"इस कामरूप कानन में
घूमता हुआ मैं पहुँचा।।

फिर इस मन्दिर में आया
देवी का दर्शन करने।
श्रद्धा से शीश झुकाया
था कामाख्या देवी को।।

कुछ शान्ति मिली थी मन को
देवी का दर्शन करके।
था शाप-युक्त जीवन को
अवलम्ब मिला देवी का।।

प्रायः आता रहता था
देवी-दर्शन करने को।
महिमा गाया करता था
मैं कामाख्या देवी की।।

देवी का दर्शन पाया
तिथि रही अमावस्या की।
देवी ने धैर्य बँधाया
थीं बड़े स्नेह से बोलीं।।

"यह पान-पात्र लो मेरा
हे, पुत्र न अब घबराओ।
आयेगा कभी सबेरा
दुःख की रजनी बीतेगी।।

मन्दिर में आते रहना
प्रत्येक अमावस्या को।
दुःख भार उठाते रहना
दुःखियों का अपने सिरपर।।

कम्बुज-धरती पर जाये
यदि कोई जम्बूवासी।
संस्थापित वहाँ कराये
इस पान-पात्र को मेरे।।

सुख से जग में विचरोगे
तब शाप-मुक्त हो करके।
पीड़ा का अन्त करोगे
इस तरह तात तुम अपनी।।

उस अनजाने प्राणी की
प्रति अमा प्रतीक्षा करना"।
उस देवी की वाणी की
यह आज्ञा मुझे मिली थी।।

नैराश्य भाव से जाता
प्रति अमा यहाँ आता था।
वेदना असह था पाता
आने-जाने के क्रम में।।

अब मैंने तुमको देखा
सदियों से भटक रहा था
अब पूर्णचन्द्र की लेखा
यह अमा बनेगी सचमुच।।

तुम जाते हो कम्बुज को
अपने गुरु की आज्ञा से।
देवी के चरणाम्बुज को
निज उर में धारण कर लो।।

कम्बुज में तुम बनवाना
चण्डी-देवी का मन्दिर।
कौण्डिन्य! भूल मत जाना
मेरी इस दृढ़ इच्छा को।।

उस मन्दिर में संस्थापित
यह पान-पात्र तुम करना।
तब मैं न रहूँगा शापित
जब तुम इतना कर दोगे।।

सबका आदर पायेगा
जब पान-पात्र मन्दिर में।
प्रियवर! तब भर जायेगा
दुर्गन्धयुक्त व्रण मेरा।।"

हम दोनों की वह गाथा
थी सुनती केवल रजनी।
हो विनत झुकाया माथा
अश्वत्थामा को मैंने।।

उस परम लक्ष्य पाने को
हो गया शीघ्र मैं उद्यत।
निज विघ्न-शत्रु दलने को
मुझमें था अतुलित साहस।।

"यह पान-पात्र अति न्यारा
कम्बुज को धन्य करेगा।"
आदेश मान स्वीकारा
मैंने सुझाव वह उनका।।

आशीष आर्य का लेकर
जब मैं था चलने वाला।
तूणीर-धनुष निज देकर
अश्वत्थामा तब बोले।।

"यह चाप वरुण का न्यारा
पाया निज पूज्य पिता से।
इसने वीरों को मारा
भारत के समराङ्गण में।।

यह धनुष सुरक्षित रखना
जीवन की अन्त घड़ी तक।
निक्षेप जलधि में करना
जब गिनना अन्तिम श्वाँसें।।

तूणीर-धनुष बलशाली
पहुँचेगा देव वरुण तक।
तुम करना नित रखवाली
विश्वास भरे सम्बल की।।

जो अस्थिवलय है संस्थित
प्रियवर! मानव-मस्तक में।
लो पान-पात्र सुव्यवस्थित
यह निर्मित हुआ उसी से।।

इस पान-पात्र में रखना
जो कुछ खाना-पीना हो।
हर स्वाद इसी में चखना
विष हरण शक्ति हैं इसमें।।

अम्बिका-रुद्र जप लेना
जब ग्रहण अन्न-जल करना।
तुम धरणी पर रख देना
अग्राशन अंश उन्हीं का।।

आगे बढ़ते ही जाना
तुम अनल कोण में प्रियवर।
चलते-चलते रुक जाना
गङ्गा-सागर के तट पर।।

उत्साही नाविक मण्डल
हैं रहते सदा वहाँ पर।
पथिकों को मिलता सम्बल
सब पार उतर जाते हैं।।

दृढ़ इच्छा पहुँचायेगी
षड्मासावधि में कम्बुज।
सिद्धियाँ चली आयेंगी
साधना पूर्ण जब होगी।।

तुम सत्वर बाण चलाना
सागर के पार पहुँचकर।
फिर चले वहाँ तक जाना
जाये वह बाण जहाँ तक।।

यदि इतना कर पाओगे
वह राज्य तुम्हारा होगा।
भू-स्वामी बन जाओगे
मुझको भी शान्ति मिलेगी।।"

अभिनव सन्देश मिला था
अश्वत्थामा का मुझको।
जो पथ-निर्देश मिला था
चल पड़ा उसी को लेकर।।

मुख पर संस्मिति की रेखा
उत्साह जगा फिर मन में।
था लक्ष्य सनातन देखा
मैंने मानव-जीवन का।।

विश्वास हृदय में आया
रोमाञ्च हुआ फिर तन को।
था सुन्दर अवसर पाया
मानव-सेवा करने का।।

पुलकित इच्छाएँ मेरी
पुलकित जन-जीवन देखा।
स्वाती की लटें घनेरी
संस्मरण पटल पर छायीं।।

थे मुझमें ऊर्जा भरते
गिरि-गह्वर-कानन सारे।
मुझको उत्साहित करते
ज्यों लक्ष्य प्राप्त करने को।।

मुझको गङ्गा की धारा
थी सम्मुख पड़ी दिखायी।
था मिलता दिखा सहारा
करबद्ध प्रणाम किया था।।

फिर पहुँचा वहाँ जहाँ पर
सुरसरि जलनिधि से मिलती।
सुख मिला अपूर्व वहाँ पर
देखा अनुपम पत्तन को।।

थी वर्षा- वृद्धा लेती
जीवन की अन्तिम साँसें।
मुख छिपा-छिपा ज्यों देती
बादल के श्वेत वसन में।।

मधु शरद-शर्वरी रानी
नव बाला-सी इठलायी।
करती उसकी अगवानी
थी महासिन्धु की लहरें।।

विधु-आभा हुई सयानी
आकर वह पुष्य नखत में।
उससे मैं प्रीति पुरानी
हँसकर धीरे से कहता।।

वह सिन्धु नाद करता था,
लहरों में भीषण गर्जन।
धरणी पग पर धरता था
मणियों की अनगिन निधियाँ।।

थे कृष्ण-गात बल शाली
कुछ नाविक मिले विचरते।
तट शोभा परम निराली
लखकर मैं प्रमुदित होता।।

गन्तव्य उन्हें बतलाया
मन्तव्य समझ वे खुश थे।
वह नाविक-दल ले आया
अति तीव्र गामिनी नौका।।

थी अनुपम नाव हमारी
क्षत्रिय-लकड़ी से निर्मित।
था कर्ण-बन्ध बल भारी
थी रज्जु-ग्रन्थि कस बाँधी।।

फेनिल लहरों पर पड़ती
ऊषा की स्वर्णिम किरणें।
जैसे स्वागत में जड़तीं
भास्वर रत्नों की लड़ियाँ।।

माङ्गलिक वाद्य-यन्त्रों का
स्वर मन को मोह रहा था।
गायन वैदिक मन्त्रों का
था किया निपुण विप्रों ने।।

थीं क्षौम-दुकूल अलङ्कृत
तट पर मनहर कन्याएँ।
नूपुर ध्वनि से था झङ्कृत
वह शान्त पुलिन वारिधि का।।

टीका नौका को मेरी
उन सबने प्रमुदित होकर।
मिल लगा रही थीं फेरी
नर्तन की बहु मुद्रा में।।

पथ के सब सङ्कट हरना
अम्बर से किया निवेदन।
तरणी की रक्षा करना
विपरीत परिस्थितियों में।।

यह हुई निनादित वाणी
जय-जय कामाख्या देवी।
प्रमुदित होते सब प्राणी
जिसके पूजन-वन्दन से।।

स्वागत है चण्डी देवी
मेरी नौका पर आओ।
तन-मन से तेरे सेवी
यात्रा को सफल बनाओ।।

सब पवन विनत हो जाते
सङ्केत तुम्हारा पाकर।
हैं रुद्र सरल हो जाते
तव चरण-किरण महिमा से।।

तुम कृपा-पुञ्ज हो माता
तुम सबकी रक्षा करती।
हर प्राणी है सुख पाता
तेरे पूजन-वन्दन से।।

अब वरुणदेव! तुम आओ
हे सलिल-राशि के स्वामी।
नौका-रक्षक बन जाओ
मम आवाहन स्वीकारो।।

अब एक सङ्ग हम झूलें
उर्मिल उन्नत दोले में।
गन्तव्य-भूमि को छूलें
हम कृपा तुम्हारी पाकर।।

सागर को नमन किया था
नौका-यात्रा के पहले।
यह उससे माँग लिया था
तुम मेरी लाज बचा लो।।

विपरीत पवन के झोंके
जब यात्रा में आ जायें।
नौका को रहना रोके
हे देव! कृपा तुम करना।।

नौका को सम्बल देकर
तुम लक्ष्य-भूमि पहुँचाना।
अब तेरी अनुमति लेकर
प्रस्थान हमें करना है।।

आराध्य-देव तुम मेरे,
तुम पारावार सरल हो।
सब सन्ध्या और सबेरे
पूजन-वन्दन करते हैं।।

फिर नारिकेल फल अर्पित
करके श्रद्धा से मैंने।
सागर को किया समर्पित
शुभ रोली-अक्षत-चन्दन।।

नव पुष्पराशि लहरायी
जलनिधि की शुभ ग्रीवा में।
थीं हमको पड़ी सुनायी
शङ्खों की पावन ध्वनियाँ।।

सङ्केत सिन्धु का पाया
मैंने लहरों के मिस से।
मेरा मानस हरषाया
शुभ शकुन हुए मङ्गलमय।।

नौका को तुरत बढ़ाया।
करके दिनकर का वन्दन।
था अपर जलधि लहराया
मेरे मानस के भीतर।।

□□

कल्लोल उछलते गिरते
वे व्योम पहुँच हहराते।
फिर लगे प्रभञ्जन चलने
थे सूँस मगन इतराते।।

आवर्त-विवर में फँसकर
थे दन्दशूक चकराते।
अपने अनुभव की बातें
नाविक रहते दुहराते।।

क्षारोदधि गरज रहा था
जैसे बजती रणभेरी।
थी ऊपर नीचे होती
असहाय नाव वह मेरी।।

थीं कँपती सभी दिशाएँ
था कँपता तन-मन मेरा।
मेरे नयनों के सम्मुख
छा जाता गहन अँधेरा।।

लहरों से जैसे क्रीडा
झष, रोहित, मद्गुर करते।
हम सबका मन बहलाते
उत्साह हृदय में भरते।।

लहरों में पूर्व दिशा की
था सहसा कम्पन आया।
प्राचीन वात ने पहले
विकराल रूप दिखलाया।।

कुछ सोचें समझें जब तक
यह पवन किधर से आया।
उत्तरावात ने सहसा
हम सबका धैर्य भगाया।।

थे पवन प्राण के इच्छुक
ज्यों जलधि शत्रुता ठाने।
थी आशा भरी विवशता
क्या होगा कैसे जानें??

थे वरुण देव ज्यों क्रोधित
लहरों का जाल बिछाये।
घन प्रलय तरङ्गे उठतीं
थीं भृकुटी कुटिल चढ़ाये।।

सहमे कुछ सहचर मेरे
अब प्राण बचेंगे कैसे ?
कम्बुज-धरती पर जाकर
इतिहास रचेंगे कैसे??

कोई सहयात्री बोला
"नाविक पतवार सँभाले।
सम्यक् संस्थिर हो करके
पालें ढीली कर डाले।।"

तब कुशल दिशाधर हँसकर
था आशा हमें बताता।
चल रही उचित ही नौका
कह सबको धैर्य बँधाता।।

लख पारावार अगम को
यह मेरे मन में आया।
जलनिधि की पावन यात्रा
है वरुणदेव की माया।।

"बल तेरा सीमित मानव
हैं वरुण देव बलशाली।
अब शरणागत हम तेरे
कर प्रबल बाहु रखवाली"।।

था पवन वेग से बहता
थीं ऊँची उठती लहरें।
बस एक विकलता रहती
हम किधर कहाँ से ठहरें??

तब जीवन और मरण में
कुछ चरण बची थी दूरी।
उत्साह सतत था कहता
उर-इच्छा होगी पूरी।।

विश्वास हमारा सम्बल
थे जिसके बल पर जीते।
वे पल कितने थे भारी
जो किसी तरह थे बीते।।

सहसा आँखों के सम्मुख
घनघोर अँधेरा छाया।
लगता था जैसे यम का
हो नेह-निमन्त्रण आया।।

हमको लगता था जैसे
अब जल-समाधि लेना है।
अपने प्राणों का सबको
अब मोह छोड़ देना है।।

आदित्य देव को हमने
होकर निरुपाय पुकारा।
हे सूर्य देव! आ करके
दें हमको सबल सहारा।।

थीं कुछ घड़ियाँ जब बीतीं
हम सबकी मूर्च्छा टूटी।
सब देख रहे थे ऐसे
जैसे निद्रा हो टूटी।।

जैसे नयनों के भीतर
है कोमल पुतली फिरती
त्यों शान्त सुरक्षित तरणी
थी धीरे-धीरे तिरती।।

कुछ बहते फूल कहाँ से
नौका के सम्मुख आये?
लग रहा किसी मुग्धा ने
सागर में सुमन चढ़ाये।।

समवेत कण्ठ से निकला
जय मणि मेखला भवानी।
जय जय जय रण चण्डी
जय कामाख्या महरानी।।

मुख पर पुलकन दिखती थी
पुलकित था हृदय हमारा।
सब सहयात्री पुलकित थे
खुश दिखता थ जग सारा।।

सब सहयात्री नौका के
जीवन-अनुभव बतलाते।
होतीं अमूल्य चर्चाएँ
हम आगे बढ़ते जाते।।

उस पारावार अतल में
थी तरणी क्रीड़ा करती।
मन्थर गति हिलती डुलती
वह उर की पीड़ा हरती।।

पथ के समस्त विघ्नों को
साहस से दलते-दलते।
इक्षु-रस-सिन्धु में नौका
आ पहुँची चलते-चलते।।

इक्षु-रस सदृश मीठा जल
कल-कल-कल करता बहता।
भर लें मिठास अन्तर में
वह सङ्केतों से कहता।।

कुछ दूर बढ़ी थी नौका
अम्बुधि ने कहर ढहाया।
हम सब चिन्ता में डूबे
प्राणों पर सङ्कट आया।।

उत्ताल तरङ्गें उठतीं
गर्जन था महाभयङ्कर।
वह दृश्य देख सब सहमे,
वह लगता था प्रलयङ्कर।।

कुछ दूर-दूर थीं फैली
चट्टाने कई नुकीली।
दिखती थीं गहन निशा में
हीरक जैसी चमकीली।।

ये तेज धार वाली हैं
मणि-शिला इन्हें कहते हैं।
नौकाओं के सञ्चालक
इनसे बचकर रहते हैं।।

कुछ समतल बड़ी शिलाएँ
दिखती हैं कहीं-कहीं पर।
आतीं उजली रातों में
रूपसियाँ मधुर वहीं पर।।

वे नाविक को सङ्केतों-
से अपने पास बुलातीं।
निज भाव-भङ्गिमाओं से
लोलुप मन को पिघलातीं।।

जलपरियों के चक्कर में
जो यात्री पड़ जाते हैं।
नौकाएँ फँस जाती हैं
वे पहुँच नहीं पाते हैं।।

चट्टानों की नोकों से
जब नावें टकराती हैं।
वे छिन्न-भिन्न हो जातीं
जलपरियाँ मुसकाती हैं।।

यदि कहीं तैर कर कोई
यात्री उन तक जाता है।
वे पदाघात करती है,
वह जल में अकुलाता है।।

हाँफते-डाँफते-मरते
उनकी घिग्घी बँध जाती।
वे कुटिला मायाविनियाँ
मोहक सुर में हैं गातीं।।

ये बालाएँ हैं उनकी
जो सिन्धु-यक्ष कहलाते।
वे वरुण देव के अनुचर
ले काल-पाश इठलाते।।

पाकर उनका आमन्त्रण
तन-मन बेसुध हो जाता।
इनकी तिरछी चितवन से
मद, यौवन ज्वार उठाता।।

नर की महिमा के सम्मुख
थीं एक बार ये हारीं।
पूनम के मादक उत्सव
में नर्तन-रत थीं सारी।।

जब अम्बुधि-यात्रा करते
कुम्भज की नौका आयी।
चल सका न इनका जादू
ये जलपरियाँ चकरायीं।।

पहुँची अगस्त्य की नौका
वह माया-क्षेत्र हिला था।
सम्मोहन दिखलाने का
कुछ अवसर नहीं मिला था।।

पढ़ कीलन मन्त्र अनोखा
मुनि ने कौतुक दिखलाया।
जिस रूप-दशा में वे थीं
उनको गतिहीन बनाया।।

यदि ग्रीवा तिरछी कुछ की
तो भुजा किसी की ऊपर।
कुछ नयन गगन पर अटके
कुछ गड़ते जाते भूपर।।

था आठ पहर तक ऋषि के
कीलन का उन पर पहरा।
थे मायातीत महामुनि
उनका अनुभव था गहरा।।

जब कीलन-मुक्त किया तब
बोले थे कुम्भज स्वामी।
"वासना रहित बन जाये
मानव सत्पथ अनुगामी।।

विषयों से गहन अरुचि हो
सब राग-रहित हो जायें
गहरे कीचड़ में रहकर
सब कमल सदृश मुसकायें।।

प्रतिकूल मिले पथ यदि तो
पथ अपने आप बनायें।
सौन्दर्य-सिन्धु में हों तो
मन -नौका डूब न जाये"।।

सन्देश अमर यह उनका
जो योग-भोग के ज्ञाता।
संयम, पौरुष के कारण
हो गये कुशल जन-त्राता।।

मणि-शिला बहुत अति शोभन
वह माया-क्षेत्र निकट था।
कुछ कहा महानाविक ने
स्वर उसका हुआ विकट था।।

"कार्पास कर्ण में भरकर
सब सावधान हो जायें।
कलकण्ठ मृत्यु का मादक
कोई न कहीं सुन पाये।।"

मन मेरा फिसल न जाये
ले घेर न मुझको माया।
इसलिए महानाविक ने
मेरे तन को बँधवाया।।

उन जलपरियों ने हँसकर
था मुझको निकट बुलाया।
उनके अभिनव आकर्षण
ने मोह-जाल फैलाया।।

मधु देह-लता पर उनकी
था चित्त विकल हो जाता।
फिर करने को गलबाँही
था बेसुध मन ललचाता।।

मन मेरा डोल उठा था
रति की इच्छा जग जाती।
रह-रहकर जोर लगाता
पर देह न थी खुल पाती।।

मैं बहुत अधीर हुआ था
संयम हँसता था मुझ पर।
सङ्गीति-रज्जु से खिंचता।
बलि-पशु, सा मन रह रह कर।।

रह-रह कर उमड़ रही थी
वह तरल विकलता मेरी।
प्रति अवयव के कण-कण में
थी चिनगारी की ढेरी।।

उर के चञ्चल जलनिधि में
थीं ज्वार-तरङ्गें आयीं।
या बडवानल की लपटें
थीं ज्वाला-माला लायीं।।

आँखों के मधुर मिलन का
अनुभव अतीत का अपना।
मैं भूल नहीं पाता था
रति-सुख लगता था सपना।।

तब संयम खोकर मैंने
था पूरा जोर लगाया।
अत्यन्त सुदृढ़ वह बन्धन
था किन्तु नहीं खुल पाया।।

तन-मन था अति उत्तेजित
मैं कसकर जोर लगाता,।
वह बन्धन, बन्धु सुदृढ बन
था मेरे प्राण बचाता।।

रक्षार्थ कभी आवश्यक
होता है कोई बन्धन।
यह धर्म शास्त्र बतलाते
कहते हैं यह षड् दर्शन।।

नियमों के परिपालन से
हर मार्ग सुगम बन जाता।
नियमित हो मानव-जीवन
जोड़े नियमों से नाता।।

धर धीरज चाह रहा था
मैं आगे बढ़ते जाना।
उस पान-पात्र उस धनु को
था कम्बुज तक ले जाना।।

बढ़ चली नाव कुछ आगे
मणि-क्षेत्र दूर था छूटा।
मन मेरा टूट चुका था
दृढ़ बन्धन किन्तु न टूटा।।

तब मुदित महानाविक ने
मम रज्जु-बन्ध था खोला।
"बन्धन साधन हो जाता"
था मुसका कर यों बोला।।

□□

सन्ध्या-रजनी नित आती
ऊषा प्रतिदिन मुसकाती।
हर पल चलते रहने का
सन्देश अमर दे जाती।।

नीचे जल मचल रहा था
ऊपर नभ था मुसकाता।
सागर की लहरों जैसा
मन सतत हिलोरें खाता।।

थे दूर क्षितिज रेखा पर
सब रहते आँख गड़ाये।
कब आये स्वर्णिम धरती
कब सुन्दर सुमन चढ़ायें।।

बस लक्ष्य-प्राप्ति की इच्छा
मन में साहस भरती थी।
अव्यक्त शक्ति थी कोई
जो शौर्य भरा करती थी।।

उत्साह असीम जगाये
नौका में चलते जाते।
शीतल लहरें जब आतीं
हम ठिठुरे गलते जाते।।

नव परिणीता ऊषा का
घूँघट पट अति चमकीला।
तारों के रत्न जड़े थे
लगता था अधिक सजीला।।

अपनी उलझी चूनर को
वह मुसकाकर सुलझाती।
निज प्रियतम से मिलने को
वह सजधज कर थी जाती।।

मधु-मिलन उषा-दिनकर का
मन सबका मोह रहा था।
नव नीरज, रवि-किरणों का
पथ अपलक जोह रहा था।।

छवि लोभी रत्नाकर का
अन्तर्मन था ललचाया।
छवि अतुलनीय धारण कर
पुलका गरजा लहराया।।

लहरों से लड़ते-लड़ते
हारा न हमारा मन था।
नीचे जलराशि अगम थी
ऊपर तो नील गगन था।।

लगता अज्ञात दिशा में
थी नौका बढ़ती जाती।
निस्तब्ध निरी निर्जनता
थी घनीभूत हो जाती ।।

जलचर-थलचर-जड़-जङ्गम
थे कहीं नहीं दिख पाते।
तारागण निबिड निशा में
थे दिशा-बोध दे जाते।।

सहसा अथाह सागर में
मन को विश्वास हुआ था।
था सुखद साम-स्वर गूंजा
ऐसा आभास हुआ था।।

थीं साम-वेद के मन्त्रों
की ध्वनियाँ पड़ी सुनायी।
गुरुकुल के सुभग तपोवन
की याद मुझे तब आयी।।

जम्बू का मन्त्रोच्चारण
जल-राज्य हुआ था पावन।
था सुखद सुयोग कहाँ से
आया इतना मन भावन??

था इधर सुनायी पड़ता
"निस्सीम व्योम की जय हो"।
फिर उधर सुनायी पड़ता
"मघवा की जय-जय-जय हो।।"

"है अप्रतिहत गति जिसकी
उस मन में भरी त्वरा हो।
जो पवन सदृश चलता है
मन शिव-सङ्कल्प भरा हो"।।

इतने में पड़ी दिखायी
स्वर्णिम गरुड़ों की टोली।
नभ में, नौका के ऊपर
से होकर सहसा डोली।।

इन गरुड़ों के डैनों से
होकर जो हवा हहरती।
वे ध्वनियाँ मन्त्र सरीखी
बन मन विस्मय से भरतीं।।

कर वैनतेय का वन्दन
नौका में डॉड़ लगाया।
कम्बुज-धरती को पायें
यह भाव हृदय में आया।।

तारावलियाँ थीं हँसतीं
थी चन्द्र-छटा मुसकाती।
शशि सुधा-कलश छलकाता
तब ओषधियाँ खिल जातीं।।

रवि-किरणें प्यार जतातीं
ज्योत्स्ना नेह बरसाती।
मृदु स्वर में धीरे-धीरे
लहरें सङ्गीत सुनातीं।।

उस निर्मल महाजलधि में
थी मेरी नौका तिरती।
मन में स्वाती की छवि भी
रह-रह कर कभी उभरती।।

दिख पड़ी जलधि के जल में
थी पूर्ण चन्द्र परछाईं।
उसकी मञ्जुल प्राभा में
थी स्वाती की छवि छायी।।

रह रह उत्ताल तरङ्गें
उठती गिरती रहती थीं।
ध्यानाकर्षण कर सबका
जीवन-दर्शन कहती थीं।।

दिन-रजनी-सन्ध्या-प्रातः
था चलना लक्ष्य हमारा।
कामाख्या को जपता था
वे देतीं सतत सहारा।।

थी नाव बढ़ी कुछ आगे
नग एक पड़ा दिखलायी।
पुलकित पुष्पित मञ्जरियाँ,
थी सुरभि सुहानी आयी।।

दिनकर की स्वर्णिम किरणें
थीं उच्च शिखर पर पड़तीं।
स्वर्णाभूषण ज्यों कोंपल
थी प्रकृति नगीना जड़ती।।

बालारूण ऊषा के सँग
उदयाचल पर मुसकाता।
खग-कलरव उन दोनों की
नित प्रणय-कथा दुहराता।।

वन–वक्ष फाड़कर निकली
नदियाँ करती थीं कलकल।
गज–मद–जल सा नग–सिर से
झरने झरते थे अविरल।।

□□

प्रतिकूल परिस्थितियों से
करती घनघोर लड़ाई।
पय-पयनिधि की सीमा में
थी नौका मेरी आयी।।

जल मधुर दुग्ध सा उज्ज्वल
है क्षीर-सिन्धु कहलाता।
यह विकल समुद्र नहीं है
मन शान्त यहाँ हो जाता।।

है बिछी विष्णु की शय्या
लहरें न अधिक चञ्चल हैं।
जल-जीव मगन रहते हैं
पाते हरि का सम्बल हैं।।

मन डूब गया था मेरा
उस क्षीरोदधि के तल में
थ एक सिन्धु लहराया
तब मेरे अन्तस्तल में।।

वह सर्व शक्ति धर व्यापक
उसकी प्रभुता अग जग में।
सबका परिपालन करता
रहता लक्ष्मी के सँग में।।

उस विष्णु-क्षेत्र में, मन में
उत्साह अधिक भर आया।
आशा की किरणें फूटीं
श्रद्धा से शीश झुकाया।।

सम्यक् संस्थिर अन्तर में
जब विष्णु-सत्त्व है रहता।
कल्याण प्राप्त हो सबको
उर सदा मनन है करता।।

ये विषय छली बन हमको
शुभ पथ से नहीं हटाते।
जग-मङ्गल की यात्रा में
बन बान्धव हाथ बँटाते।।

इस पाप-पुण्य-सीमा का
कब कौन करे निर्धारण?
रण चलता रहता उर में
हो कैसे भला निवारण??

रहती हैं हृदय-उदधि में
तम-सत्त्व-रजस की लहरें।
है कितनों में ये क्षमता
जो इनके सम्मुख ठहरें।।

तम-रजस-तरङ्गें मन में
हैं आकर्षण भर जातीं।
रसवन्ती माया-नगरी
सबको बेसुध कर जाती।।

है सत्त्व परम हितकारी
सबके भ्रम को हर लेता।
सुख-शान्ति-सुधा-रस देकर
मन को निर्मल कर कर देता।।

चाँदनी-निशा में शशिमुख
उतरा अवगाहन करने।
सुरलोक प्रफुल्लित होकर
आया अतुलित छवि भरने।।

था पूर्व क्षितिज से निकला
मुसकाता सा शशि-मण्डल।
मच गयी लोल लहरों के
मन में विद्युत सी हलचल।।

थी पूर्ण यौवना पूनम
रजताचल पर जब आती।
नक्षत्र-हार कर धारण
तब मन्द-मन्द मुसकाती।।

रत्नाकर के रत्नों की
छवि चमक रही थी जल में।
नक्षत्र-लोक था उतरा
मानों सागर के तल में।।

की कृपा विष्णु ने हम पर
फिर आया शीतल झोंका।
आश्वस्त हुए थे हम सब
बढ़ चली हमारी नौका।।

विषकन्या सरिस प्रतीची
रवि के मन को ललचाती।
पौरुष को दे आमन्त्रण
इङ्गन से निकट बुलाती।।

मदमय मृगनयनी छलना
दिनकर को फुसला लेती।
प्रिय का तन-मन ढँकने को
तम-वसन डाल थी देती।।

तब नील गनन-मण्डल पर
तम चीर सुधाकर आता।
अपनी शीतल किरणों से
वह स्नेह-सुधा बरसाता।।

रवि गेह प्रतीची का तज
प्राची के घर आ जाता।
जब निशा चली जाती है
वह उषा सङ्ग मुसकाता।।

रवि उषा साथ जब आता
दिखता यज्ञाग्नि प्रबल सा।
प्राची में तब उदयाचल
दिखता था स्वर्णाचल सा।।

रवि उदयाचल से उठकर
अस्ताचल तक है जाता।
अविरल चलते रहने का
सन्देश हमें दे जाता।।

काली रातों में सहमा
करती थी नाव हमारी।
सामने खड़ा हो जैसे
दुर्गम कज्जल-गिरि भारी।।

नौका बढ़ती थी मेरी
मन मेरा था हुलसाता।
उत्ताल ज्वार था पथ को
अवरूद्ध नहीं कर पाता।।

जल-पथ में हम लोगों को
थे सुघर द्वीप मिल जाते।
उनकी अद्भुत सुषमा से
थे हृदय-कुसुम खिल जाते।।

जब रसमय श्यामल जलधर
शीतल फुहार ले आते।
जग के सूखे जीवन में
तब नवल प्राण भर जाते।।

उँगलियाँ पवन की कोमल
कलियों को जब सहलातीं।
तब मन्द मदिर मुसकानें
उनके मन में भर जातीं।।

जब पुष्कर-गन्धि मनोरम
भी चारों ओर बिखरती।
तब हम सबके मानस में
मधु की बूँदें थीं झरती।।

हम धैर्य सँजोये रहते
जब भी सङ्कट में पड़ते।
बढ़ती जाती थी नौका
भीषण लहरों से लड़ते।।

कम्बुज-धरती पाने को
लालसा सदा इठलाती।
विघ्नों के गिरि झुक जाते
थी राह सरल बन जाती।।

गन्तव्य मिलेगा हमको
पहुँचेगी नाव हमारी।
हम आगे बढ़ते जाते
विश्वास भरा था भारी।।

फिर मुझे प्रतीत हुआ था
नौका अति दक्षिण आयी।
कम्बुज की भूमि पड़ेगी।
इस पथ से नहीं दिखायी।।

आगे का मार्ग अगम था
दिखता था धुँधला-धुँधला।
नौका की गति कर धीमी
उस पथ को हमने बदला।।

दिक् सूचक देख दिशाधर
वाञ्छित पथ पर था चलता।
आवश्यकता पड़ने पर
नौका की दिशा बदलता।।

फिर कर्ण घुमाकर उसने
कुछ दिशा नाव की मोड़ी।
ईशान कोण में चलते
आशा न किसी ने छोड़ी।।

गन्तव्य दिशा में नौका
थी धीरे-धीरे तिरती।
नाविक दल के आनन पर
संस्मिति की छाया फिरती।।

दिनकर-हिमकर की लड़ियाँ
थीं नित हमको बहलातीं।
सन्ध्या सागर-शोभा को
अनुराग माल पहनातीं।।

कुछ दूर बढ़े हम जैसे
फिर खारा सागर आया।
था उग्ररूप जलनिधि का
मन किन्तु नहीं थर्राया।।

लहरें नभ को छू छूकर
भीषण उत्पात मचातीं।
बच जाओ तो अब जानें
कह बार-बार हहरातीं।।

जब समर-निमन्त्रण देकर
ललकार रही थीं लहरें।
तब हम सब सोच रहे थे
अब किधर कहाँ से ठहरें??

थे कठिन ऊर्मि से लड़कर
सब जर्जर होते जाते।
पर धैर्य-मित्र के कारण
हम मस्तक नहीं झुकाते।।

पाथेय रहित थी नौका
बस वारि-पान का सम्बल।
फिर भी पौरुष भरता था
अन्तर में विपुल नवल बल।।

जलनिधि की घातक लहरें
यदि मेरा स्वागत करतीं।
तो लिए सुमाल बुलाती
कम्बुज की स्वर्णिम धरती।।

किस प्रिय से प्रथम मिलन हो
उपहार अङ्क दूँ किसको?
शीतल छाती हो जाये
नयनों में पाकर जिसको।।

वह प्रथम प्रणय की रानी
संस्मृति में स्वाती छायी।
लगता मरने के पहले
ज्यों प्राण-प्रिया हो आयी।।

अब मरण वरण करता हूँ
अयि! दूर क्षितिज के वासी।
सुन अन्तिम प्रणय निवेदन
जिसमें है मधुर उदासी।।

नक्षत्र समुज्जवल बनकर
मग को मङ्गलमय करना।
तम पुञ्ज भरे अन्तर में
आनन्द-किरण नित भरना।।

सन्ध्या की छवि बेला में
वह दीपक-बाती करना।
अवनत मुख से बाला का
धीरे-धीरे कुछ कहना।।

उन नत नयनों का रह-रह
परवशता पर मुसकाना।
मन की कोमल कलिका पर
फिर विद्युत का गिर जाना।।

नयनों के सम्मुख सारे
बीते क्षण नाच रहे थे।
हम भाग्य-लेख को अपने
बेसुध हो बाँच रहे थे।।

चण्डी-देवी को मैंने
फिर होकर व्यथित पुकारा।
है महाविपिन जगती का
आलोकित जिससे सारा।।

जिसकी करुणा से मुझको
है सम्बल मिलता आया।
आ करके धैर्य बँधाती
थी उस देवी की छाया।।

यह पान-पात्र देवी का
है कम्बुज तक ले जाना।
पर झञ्झा चाह रही थी
तब मेरी नाव डुबाना।।

श्रद्धा से अन्तर भरकर
देवी को शीश झुकाया।
तब चरणों का अनुगामी
कह क्लेश अशेष सुनाया।।

सहसा नयनों में चमकी
वह जन्म-भूमि की धरती।
शैशव में अङ्क लगाकर
थी तन में तेजस भरती।।

निज विन्ध्य-विपिन नन्दन सा,
रेवा का निर्मल पानी।
तन के शोणित-कण-कण में
है जिसकी मधुर कहानी।।

जम्बू-धरती ने मुझको
विश्वास विशेष दिलाया।
इन दुर्दिन की घड़ियों में
करने को समर सिखाया।।

हो पूर्ण कला की युवती
वह विधु-लेखा का खिलना।
फिर व्याकुल वारिधि-उर में
मुसकाना और मचलना।।

विश्राम तनिक करने को
तरुओं के नीचे रुकना।
अवसाद भरी घड़ियों में
है सीखा कभी न झुकना।।

अम्बुधि-माया-नगरी में
वह जलपरियों का तिरना।
नव मधुलोभी नयनों में
उस प्रकृति-रमा को भरना।।

क्या कभी लौट पायेंगी
वे रसमय घड़ियाँ प्यारी?
मानस में अङ्कित होतीं
संस्मृतियाँ कितनी सारी।।

इस तरह नियति के वश में
थी मेरी नौका बहती।
"यह मरण बनेगा मङ्गल"
हैं वेद-ऋचाएँ कहतीं।।

हो चुका अगस्त्य उदित था
आश्विन आरम्भ हुआ था।
कम्बुज खोजने चला था
वामन ने गगन छुआ था।।

था चैत्र-मास के लगते
रवि मीन-राशि में आया।
षड्मास सिन्धु-यात्रा में
नौका में समय बिताया।।

गुरुवर अश्वत्थामा ने
जो कालावधि बतलायी।
वह बीती चलते-चलते,
आशा की किरणें आयीं।।

अब लक्ष्य निकट ही होगा
मैं सोच रहा था ऐसा।
शीतलता देने वाला
धीरज था हिमकर जैसा।।

दिनकर का ताप बढ़ा था
थी देह झुलसती जाती।
लगता था धीरे-धीरे
ज्यों मृत्यु निकट हो आती।।

तब झञ्झा एक अचानक
थी दूर क्षितिज से आयी।
नौका में लगे थपेड़े
कुछ शीतलता तब छायी।।

विकराल रूप वारिधि का
थे नाविक सब घबराये।
अब प्राण न बच पायेंगे
यह सोच सभी चिल्लाये।।

आकाश पटल पर सहसा
दानव से वारिद आये।
वे उमड़ घुमड़ कर उस क्षण
कर अट्टहास इठलाये।।

लहरें भी लगीं उछलने
पाकर झञ्झा की ताली।
काली बन लगी थिरकने
अन्धी आँधी मतवाली।।

आँखों के सम्मुख घिरती
घन अन्धकार की छाया।
थे जान नहीं हम पाते
कैसा दुर्दिन था आया।।

हो विकल महानाविक तब
ऊँचे स्वर में चिल्लाया।
"सब सावधान हो जायें
है मरण निकट अब आया।।

जीवन की छूटी आशा
अब व्यर्थ हुए सब सम्बल।
हे वरुण देव! चरणों में
है शरणागत नाविक दल।।"

नौका से कन्दुक-क्रीड़ा
ज्यों सिन्धु-ऊर्मियाँ करतीं।
हम सबके जीवन सम्मुख
वे प्रश्न उपस्थित करतीं।।

जब तरणी उठती गिरती
तब चरण विकल हो जाते।
अन्तिम श्वाँसों के सम्मुख
हम किसको धैर्य बँधाते।।

शुभ पान-पात्र को बाँधा
था उत्तरीय में अपने।
देवी का ध्यान किया फिर
टूटे न हमारे सपने।।

तूणीर-धनुष को मैंने
कस लिया पीठ पर ऐसे।
अपने बच्चे को वानर
कसकर चिपकाता जैसे।।

इतने में ऊँची उठतीं
लहरों पर लहरें आयीं।
जलमय करके नौका को
वे बार-बार हहरायीं।।

नौका डूबी, सहयात्री
थे चिरनिद्रा में सोये।
मैं मरण-पर्व पर उनके
था अपने नयन भिंगोये।।

कर ध्यान चण्डिका का मैं
लहरों को गले लगाये।
अम्बुधि में तिरता जाता
कर को पतवार बनाये।।

लहरों के उन्नत दोलों
में उठता-गिरता-बहता।
मन हार नहीं माना था
विश्वास सँजोये रहता।।

मैं सोच रहा था, क्या मैं
कम्बुज तक जा पाऊँगा?
क्या श्रुति-संस्कृति-किरणों को
जन जन तक पहुँचाऊगा??

तन मेरा चूर हुआ था
लहरों से लड़कर हारा।
गुरु का आदेश अधूरा
अब देगा कौन सहारा??

व्याकुल हो सोच रहा था
क्या पुण्य शेष है कोई?
कुछ क्षण के बाद अचानक
चेतना देह की सोयी।।
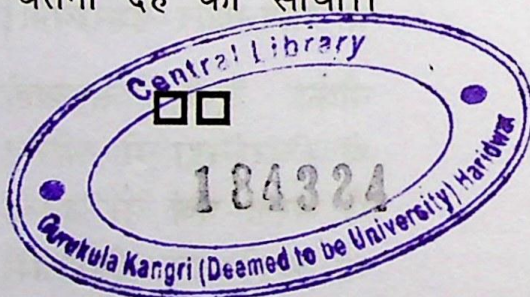
अर्णव के शीत पवन ने
धीरे धीरे सहलाया।
मम शिथिल पड़े तन-मन में
अभिनव उत्साह जगाया।।

दिनकर की पहली किरणें
सागर के तट पर आयीं।
आदित्य-लोक की छवि को
लेकर उतरीं मुसकायीं।।

निज लक्ष्य मिलेगा मुझको
विश्वास हुआ था ऐसा।
कब असफल कौन हुआ है?
उत्साही मेरे जैसा।।

अन्तर ने धैर्य बँधाकर
उत्साह विशेष दिखाया।
किस स्वप्नलोक का जीवन
मैं समझ नहीं यह पाया।।

जिनकी अनुकम्पा से था
नव जीवन मैंने पाया।
उस चण्डी देवी को था
फिर मैंने शीश झुकाया।।

मैं ढूँढ़ रहा था जिसको
यह लगा वही है धरती।
कामना मीत बन आयी
थी मधुर तान वह भरती।।

सम्बल से उदर पटल के
रुक-रुक कुछ लगा सरकने।
जीवन की नव आशा से
मन मेरा लगा बहँकने।।

थीं कल कल करतीं नदियाँ
अम्बुधि का चुम्बन करतीं।
तन-तन को अर्पित करके
अञ्चल में मणियाँ भरतीं।।

तरुओं के जाल बिछाये
थी दलदल धरती छाती।
यदि कहीं पूर्णिमा आती
तो कहीं अमा घिर जाती।।

घन सङ्कुल लता-वलय में
थे फणधर फू-फू करते।
निज निज फण को उन्नत कर
सर्पिणियों का मन हरते।।

थी अहि-मणियों से ज्योतित
छवि सतत लता-मण्डप की।
नत नवल फलों से दिखती
डाली प्रत्येक विटप की।।

अजगर की ऊँची श्वाँसे
हहरातीं भय उपजातीं।
थीं तटवर्ती कानन में
भीषण हड़कम्प मचातीं।।

तब जम्बु-द्वीप को मैंने
श्रद्धा से याद किया था।
जिसकी पावन नदियों का
छक जी भर अमृत पिया था।।

कम्बुज की पावन धरणी
जब लगी मुझे दुलराने।
मधु भाव भरे छन्दों को
तब लगा समीर सुनाने।।

सौन्दर्य-सिन्धु था गहरा
दिख रही प्रकृति अलबेली।
डूबे थे नयन हमारे
झलकी निष्कलुष नवेली।।

थी पुष्प-भूषिता बाला
फिर भी वह निर्वसना थी।
थी मणि मेखला निराली
वह मात्र रत्नवसना थी।।

लगता था सागर-तट पर
छवि ने ज्यों डेरा डाला।
जगमग करती थीं मणियाँ
मन हरती थी मधुबाला।।

उस नाग-सुता में अनुपम
रस-राग-रङ्ग की लड़ियाँ।
रह-रह कर कौंध रही हैं
वे प्रथम दृष्टि की घड़ियाँ।।

शशिमुख के साथ सुकोमल
शश-शावक खेल रहा था।
सुषमा के उपमानों को
वह दूर ढकेल रहा था।।

लावण्य-जलधि की तनया
कमनीया नाग-कुमारी।
सविता की कनक किरण सी
लयमय कविता सी प्यारी।।

अगणित मुक्ता-मणियों से
लहरों के थाल सजाता।
उसके कोमल चरणों में
रत्नाकर रत्न चढ़ाता।।

माधुर्य-प्रीति का अनुपम
शुचि सङ्गम चन्द्र-वलय में।
मरकत-प्रवाल-नीलम की
छवि छहराती नव वय में।।

सौन्दर्य पुलक कर मृदुता
से कहता प्रेम कहानी।
कोमलते! तेरी मेरी
युग-युग से प्रीति पुरानी।।

हम दोनों के माध्यम से
है उपजी यह शुचि काया।
इसमें सदियों से सञ्चित
तप का फल सकल समाया।।

गिरि-कानन की शोभा थी
वह अद्‌भुत रूप-कुमारी
थी जलपरियों की प्राभा
उसकी सुषमा से हारी।।

उसका माधुर्य मनोरम
मन को मदमत्त बनाता।
देखता पद्‌मगन्धा को
मैं मन को रोक न पाता।।

मधुरस अभिसिञ्चित उर में
नयनों में प्रीति बढ़ाती।
कुछ पग बढ़कर सम्भ्रम में
थी अभिलाषा सकुचाती।।

थी अमा-निशा सी वेणी
मुख था पन्नग-मणि जैसा।
किसने अपने जीत्रन में
देखा सुरूप था ऐसा??

अलकों से आवृत आनन
मनहर लगता था वैसे।
लगता है शुक्र मनोरम
प्रत्यूष काल में जैसे।।

सौन्दर्य-सुधा-रस-संयुत
अधरोष्ठ जलज थे न्यारे।
सुरतरु का सुमन कहाँ से
आया था सिन्धु किनारे।।

अभिनव मुग्धा रह रह कर
थी मन्द मन्द मुसकाती।
ज्यों मानसरोवर में हो
उतरी पूनम मदमाती।।

मन बरबस मोह रही थी
उन्नत यौवन की लाली।
गिरि के उत्तुङ्ग शिखर पर
उतरी ज्यों उषा निराली।।

वह रूप सजीव सुकोमल
नयनों में तुरत समाया।
उसको चित्रा कह करके
मन मेरा था मुसकाया।।

स्वाती ने उर को छीना
मन चित्रा ने मथ डाला।
फिर चैत्र पवन ने चलकर
तन को बेसुध कर डाला।।

अन्तर्मन पुलकित होता
चित्रा को देख अकेली।
अलि देख प्रफुल्लित होता
ज्यों कुसुमित नवल सुवेली।।

चित्रा का रूप निरखकर
मन मेरा नहीं अघाता।
मुझको लगता था जैसे
हो पूर्व जन्म का नाता।।

तज विधि-निषेध के बन्धन
दृग रूप-सुधा को पीते।
व्याकुल थे प्राण-विहङ्गम
मर-मर कर थे वे जीते।।

सङ्गीत भरा मारुत ने
नव तरुओं के पर्णों में।
अति सुमधुर पड़ा सुनायी
खग कलरव मम कर्णों में।।

शुभ आम्र-मञ्जरी सँग में
उत्सव मधुमास मनाता।
निज मन-रानी को पाकर
वह फूला नहीं समाता।।

"तुम कौन कहाँ से आये?"
चितवन ने प्रश्न उठाया?
वह नव सङ्केत अनूठा
मेरे मन को था भाया।।

सङ्केत समझकर उसका
मैं धीरे से मुसकाया।
निज कर के सङ्केतों से
अपना परिचय बतलाया।।

मैंने इङ्गन से पूछा
तुम भी दो अपना परिचय।
मम जिज्ञासा मिट जाये
हो जाये लक्ष्य विनिश्चय।।

"कम्बुज-रानी की कन्या"
अपनी भाषा में बोली।
मन के भावों का परिचय
थीं देती आँखें भोली।।

"प्रियवर! भविष्य में मुझको
बनना है सोमा रानी।"
मैं मौन मुदित सुनता था
उसकी वह ललित कहानी।।

फिर लक्ष्य-धरा को पाकर
मन में पुलकन भर आया।
गुरु के, चण्डी के पग में
था श्रद्धा-कुसुम चढ़ाया।।

उस नाग कुमारी को था
कौशेय वसन पहनाया।
यों मैंने उस पर डाली
अपनी संस्कृति की छाया।।

वह देह-लता जब सिहरी
पा परिचय प्रथम वसन से।
तब बिखरी नवल प्रभा थी
आयी ज्यों नील गगन से।।

था पान-पात्र को मैंने
सौंपा चित्रा के कर में।
उपहार प्रथम पा मेरा
फूटी नव किरण अधर में।।

मेरे मन की वीणा को
ज्यों चित्रा लगी बजाने।
त्यों प्रणय-वीथिकाओं को
कुसुमाकर लगा सजाने।।

चञ्चल नयनों से अपने
चित्रा ने बाण चलाया।
फिर घायल उर पर मेरे
उसने अधिकार जमाया।।

तब मुझको मेरे गुरु का
आदेश याद हो आया।
गुरु को प्रणाम कर मैंने
निज ज्या पर बाण चढ़ाया।।

सारे दिग्गज थे काँपे
जब मेरा खर-शर छूटा।
सङ्कल्प देख कर मेरा
पर्वत का धीरज टूटा।।

वह बाण गिरा द्रुत गति से
गिरि के अति दूर शिखर पर।
यश मेरा गूँज रहा था
भू पर, गिरि पर, अम्बर पर।।

चित्रा ने मेरे मन पर
अधिकार जमाया जैसे।
सोचा अधिकार जमाऊँ
मैं भी कम्बुज पर वैसे।।

सागर से अचल शिखर तक
शर गया जहाँ तक मेरा।
श्रुति-संस्कृति फैलाऊँगा
डालूँगा अपना डेरा।।

सङ्केत मिला चित्रा का
तब उसके साथ चला मैं
कम्बुज की इसी धरा पर
जिज्ञासा से टहला मैं।।

फिर मन्द पवन था डोला
झूमी चन्दन की डाली।
उपवन के सुमन खिले सब
निखरी लाली हरियाली।।

वन के तरु थे मदमाते
थीं लतिकाएँ मतवाली।
थी लगी कूकने केकी
पीकर के मद की प्याली।।

अति स्वच्छ सुसज्जित दिखते
थे पर्ण-कुटीर मनोहर।
मणि-दीपों की आभाएँ
हँस झाँक रही थीं घर-घर।।

उत्फुल्ल वदन चित्रा ने
था अपना आवास दिखाया
निज अतिथि-कक्ष में मुझको
फिर था उसने ठहराया।।

इस नवल युगल को पाकर
सबमें था सुख भर आया।
अंशुक-सज्जित चित्रा का
प्रिय रूप सभी को भाया।।

नित प्रायः अनुचर आकर
थे रस भर फल दे जाते।
फिर अपने सँग ले जाकर
निज क्षेत्र विशेष दिखाते।।

सम्पर्क साध कर उनसे
भाषा का ज्ञान बढ़ाया।
इस नवल निलय को पाकर
अपनत्व प्यार भर आया।।

नूतन परिवेश मिला था
नित बनती नयी कहानी।
संस्मृति में कल-कल करता
जम्बू-नदियों का पानी।।

आर्येतर कार्य बहुत से
कम्बुज में पड़े दिखायी।
नव नीति-रीति का परिचय
पाने में थी कठिनाई।।

मैं उस धरती का वासी
है जहाँ पिता कुल सत्ता।
है गौण जहाँ पर रानी
राजा की परम महत्ता।।

है ज्येष्ठ राज-सुत होता
अधिकारी सिंहासन का।
शासन का काम न होता
है राज-सुता के मन का।।

कम्बुज की धरती लगती
मुझको बिलकुल अनजानी।
नृप यहाँ शून्य सा दिखता
सर्वस्व यहाँ पर रानी।।

जब शासन-सञ्चालन का
अधिकार स्वकर में लेती।
उसको कम्बुज की जनता
सोमा रानी कह देती।।

सोमा रानी का सहचर
प्रिय सोम-पुरुष होता था।
सहयोगी बन सोमा का
वह भार सहज ढोता था।।

सोमा खुद सोम-पुरुष को
इच्छानुकूल चुनती थी।
शासन सत्ता का उत्तम
ताना-बाना बुनती थी।।

तन-मन से सबल तरुण जो
अति हृष्ट-पुष्ट होता था।
वह सोम-पुरुष बनता था
सारे कल्मष धोता था।।

वह महापुरोहित होता
सेना नायक बलशाली।
सारे दायित्व निभाता
करता सबकी रखवाली।।

था सोम-पुरुष अधिकारी
सोमा रानी के तन का।
दैहिक सुख देता रहता
स्वामी बन उसके मन का।।

प्रतिबन्ध न था रति-सुख पर
कम्बुज की हर नारी को।
कह सकता था न किसी से
नर अपनी लाचारी को।।

स्वच्छन्दचारिणी नारी
सम्बन्ध नहीं था घर से।
कामेच्छा अपनी पूरी
कर सकती थी हर नर से।।

सोमा रानी सत्ता पा
अनुशासन में बँध जाती।
बस सोम पुरुष से ही वह
थी काम-कला सुख पाती।।

वह सोम-पुरुष से ही निज
इच्छाएँ भर सकती थी।
वह और किसी भी न से
सम्बन्ध न कर सकती थी।।

सोमा की काम-तरी को
वह सोम-पुरुष खेता था।
पन्द्रह वर्षों तक उसको
वह दैहिक सुख देता था।।

पन्द्रह वर्षों तक नियमित
वह नर आदर पाता था।
नर-मेध यज्ञ आहुति में
फिर जला दिया जाता था।।

उस सोम-पुरुष का जलना
सोमा रानी की क्रीड़ा।
वह संविधान अति दारुण
मुझको देता था पीड़ा।।

जल जाता सोम-पुरुष था
जलती थी सबल जवानी।
नव सोम-पुरुष बलशाली
चुनती फिर सोमा रानी।।

हर सोम-पुरुष का जीवन
पन्द्रह वर्षों तक ही था।
कुछ दिवस और जीने में
वह पुरुष समर्थ नहीं था।।

थी राज्य चलाया करती
जीवन भर सोमा रानी।
अन्तिम श्वाँसों तक चलती
रहती उसकी मनमानी।।

रानी के मर जाने पर
बढ़ता कन्या का कद था।
मिल जाता ज्येष्ठ सुता को
सोमा रानी का पद था।।

इस तरह मातृ-सत्ता का
साम्राज्य चला करता था।
नारी की अनुकम्पा पर
हर पुरुष पला करता था।।

निज स्वार्थ सिद्ध करने को
नारी नर को ठगती थी।
कम्बुज की यह परिपाटी
अटपटी मुझे लगती थी।।

रानी की ज्येष्ठ सुता थी
सबकी जानी पहचानी।
सौभाग्यशालिनी चित्रा
थी भावी सोमा रानी।।

चित्रा निज मनस पटल पर
नित मेरा चित्र बनाती।
मेरे मन के सागर में
थी वह डुबकियाँ लगाती।।

मेरे ऊपर चित्रा का
सचमुच विश्वास घना था।
गुरु की अनुकम्पा से मैं
उसका प्रिय पात्र बना था।।

स्वच्छन्दचारिता तजकर
वह मुझमें ही रम जाती।
जाने क्या कुछ था मुझमें
वह मुझको छोड़ न पाती।।

"मुझसे चित्रा ने पूछा
क्या साथ निभाओगे तुम?
यदि मैं अपनाऊँ तो क्या
मुझको अपनाओगे तुम"??

मैं पुलकित होकर बोला
हे चित्रा मेरी रानी।
मैं अपनाऊँगा तुमको
यदि तुम छोड़ो मनमानी।।

परिणय बन्धन में बँधकर
पहले मुझको अपना लो।
मैं साथ तुम्हारा दूँगा
यदि पति तुम मुझे बना लो।।

मैं आर्य-सभ्यता का ध्वज
फहराने को आया हूँ।
कम्बुज में वेद-ऋचाएँ
फैलाने को आया हूँ।।

कम्बुज की परिपाटी को
अब तुम्हें बदलना होगा।
श्रुति-संस्कृति का ध्वज लेकर
अब तुम्हें निकलना होगा।।

जन-हित का कलश निरन्तर
सेवा-जल से भरना है।
अभिशप्त मनुज जीवन को
नित मङ्गलमय करना है।।

चित्रा का सहज समर्पण,
घनघोर समर्थन पाया।
उसकी सहमति को पाकर
मन फूला नहीं समाया।।

थी मेरी अभिलाषा को
मिल गयी मधुर सी वाणी।
इस धरती पर विकसेगी
बन श्रुति-संस्कृति कल्याणी।।

मानव-मङ्गल के व्रत को
था हम दोनों ने ठाना।
तैयार किया फिर अभिनव
संस्कृति का ताना-बाना।।

परिणय-बन्धन में बँधना
था चित्रा ने स्वीकारा।
जलनिधि के पावन तट पर
हो गया विवाह हमारा।।

अपने विवाह में मैंने
श्रुति-मन्त्र स्वयं उच्चारा।
पावक को साक्षी करके
जीवन का पन्थ सँवारा।।

नर-नारी सम्बन्धों में
अभिनव अध्याय जुड़ा था।
नूतन संस्कृति के पथ पर
कम्बुज का लक्ष्य मुड़ा था।।

इस अनहोनी घटनाको
सोमा रानी ने जाना।
कम्बुज की मर्यादा का
उसने उल्लङ्घन माना।।

निज दूत भेज सोमा ने
चित्रा को था बुलवाया।
श्रुति-संस्कृति को तजने का
उसने आदेश सुनाया।।

कुछ असर नहीं हो पाया
चित्रा ने बात न मानी।
क्रोधित थी हम दोनों पर
वह कुटिला सोमा रानी।।

मेरी हत्या करने की
सोमा ने मन में ठानी।
क्रोधानल में था सूखा
उसके नयनों का पानी।।

बलशाली सोम-पुरुष का
था गर्म हुआ जब पारा।
तब ताल ठोंक कर मैंने
खुद था उसको ललकारा।।

उस द्वन्द्व युद्ध में मैंने
था सोम पुरुष को मारा।
फिर सोमा रानी को भी
मैंने झटपट संहारा।।

इस तरह बनी थी चित्रा
कम्बुज की सोमा रानी।
जनता ने बढ़कर की थी
हम दोनों की अगवानी।।

सोमा रानी चित्रा ने
जन सभा एक बुलवायी।
उसका आवाहन सुनकर
सारी जनता थी आयी।।

था सोम-पुरुष के पद पर
उसने मुझको बैठाया।
विस्तृत परिचय दे मेरा
सबको विश्वास दिलाया।।

घोषणा हुई सोमा की
अब संविधान बदला है।
मानव-मङ्गल के नभ में
अभिनव दिनकर निकला है।।

"अब सोम-पुरुष ही होगा।
अपनी धरती का राजा।
अब चारों ओर बजेगा
उसके शुभ यश का बाजा।।

अब पुरुष प्रधान बनेगा
यह सभ्य समाज हमारा।
नारी सहगामिनि होगी
नर देगा उसे सहारा।।

स्वच्छन्दचारिता वर्जित
अब कम्बुज भू पर होगी।
भोग्या न रहेगी नारी
नर अब न रहेगी भोगी।।

अब इस भू पर आवश्यक
होगा वैवाहिक बन्धन।
नारी शीतलता होगी
नर होगा उत्तम चन्दन।।

अब नर-नारी दोनों को
पति-पत्नी बनना होगा।
मिल जुल मङ्गलमय पथ पर
दोनों को चलना होगा।।

पति-पत्नी को जीवन भर
अब साथ निभाना होगा।
सुव्यवस्थित जीवन होगा
परिवार बसाना होगा।।

अब सोम-पुरुष बैठेगा
कम्बुज के सिंहासन पर।
अधिकार उसी का होगा
यावज्जीवन शासन पर"।।

सोमा रानी ने मुझको
फिर राज मुकुट पहनाया।
जनता की सहमति लेकर
सिंहासन पर बैठाया।।

मैंने निर्माण किया फिर
अति सबल मन्त्रिमण्डल का।
आशीष मिला था मुझको
सचमुच सागर के जल का।।

कम्बुज की सत्ता पाकर
मैं लक्ष्य नहीं भूला था।
आशा बलवती हुई थी
मेरा मन अति फूला था।।

चण्डी देवी का अनुपम
मन्दिर मैंने बनवाया।
शुभ पान-पात्र को उसमें
था संस्थापित करवाया।।

देवी दुर्गा कल्याणी
जीवन सुखमय कर देती।
पावन करती मन वाणी
उत्साह पुञ्ज भर देती।।

वह है जग को उपजाती
सबका पोषण करती है।
चण्डी प्रचण्ड बन जाती
जब विषम काल आता है।।

गुरु की आज्ञा पालन कर
आनन्द अपरिमित पाया।
मैंने चण्डी देवी को
श्रद्धा से शीश झुकाया।।

मैंने यह विनती की थी
माँ चण्डी कल्याणी से।
मैं पाऊँ स्नेह निरन्तर
इस जग में हर प्राणी से।।

जब श्रेय-पन्थ से भटकूँ
तब तुम सत्पथ दिखलाना।
छाये जब गहन अँधेरा
पथ में तब ज्योति जलाना।।

तुम ऐसी क्षमता देना
सबमें समरसता लाऊँ।
अबलों-निबलों-दलितों का
दुःख सबका सदा बटाऊँ।।

अम्बे! कितनी अच्छी है
वह जम्बू-भूमि हमारी।
अपनी संस्कृति लगती है
प्राणों से बढ़कर प्यारी।।

माँ! तेरी अनुकम्पा का
अभिनव वितान तन जाये।
सम्प्रति अनार्य धरती पर
सब लोग आर्य बन जायें।।

विस्तार आर्य-संस्कृति का
मैं चाह रहा हूँ करना।
उद्देश्य सफल हो जाये
मुझमें वह ताकत भरना।।

श्रुति-संस्कृति को फैलाकर
सब में सुख भरना होगा।
अब मुझको कनक धरा का
अवलोकन करना होगा।।

दायित्व बढ़ा था मेरा
थी मेरी सबल अवस्था।
मैंने स्व मन्त्रिपरिषद को
सौंपी थी राज्य व्यवस्था।।

सोमा के साथ चला मैं।
चुपचाप भ्रमण करने को।
सबका दुःख अपनाने को
सबकी पीड़ा हरने को।।

थी स्वर्ण-भूमि की यात्रा
लगती हमको सुखदायी।
सौन्दर्य-सिन्धु था उमड़ा।
छवि-सरिता थी उफनायी।।

मैं लता निकुञ्ज निचय को
कर से चलता दुलराता।
झरनों के कल--कल स्वर में
था प्यार प्रकृति का पाता।।

था भानु गगन में जलता
थे धरती पर हम जलते।
परवाह नहीं थी कोई
हम बिना थके थे चलते।।

सोमा थी रस बरसाती
तन-मन हर्षित हो जाता।
सुन्दरता विन्ध्य-विपिन की
मैं उस कानन में पाता।।

नभ के पश्चिम कोने में
फैली सन्ध्या की लाली।
कुछ दूर क्षितिज में झलकी
मणि-दीपों की दीवाली।।

सोमा ने निज नयनों से
सङ्केत किया दिखलाया।
देखी मैंने जो लीला
रोमाञ्च मुझे हो आया।।

उत्तेजक गायन-वादन
प्रमदाएँ नर्तन करतीं।
अपने मादक अङ्गों से
सबमें मादकता भरतीं।।

मदिरा पी उठती गिरती
नारी पुरुषों की टोली।
पग पड़ते इधर-उधर थे
अटपटी बहुत थी बोली।।

वारुणी सनी रजनी में
थे सबके तन-मन ढीले।
सब मिलकर चाह रहे थे
जीवन भर ऐसे जी लें।।

नर-नारी-रति-क्रीड़ा रत
अङ्गों में ज्वाला आयी।
पुरुषार्थ काम पर धब्बे
पड़ते थे साफ दिखायी।।

लख यूथ विलास अशुचि वह
मेरी आँखें भर आयीं।
है यहाँ कहाँ वह शुचिता
जो जम्बू में चिर छायी।।

मदिरामिष के सेवन में
था उनका जीवन चलता।
नव परिवर्तन लाने का
शुभ भाव हृदय में पलता।।

इस पाप-कुम्भ को फोड़ें
अब सब पति-पत्नी बनकर।
यह यूथ विलास अशुभ है
खुश हों इसका मर्दन कर।।

सोमा रानी को अपना
अनुराग विशेष दिखाता।
तुम मेरी प्राण प्रिया हो
टूटे न कभी यह नाता।।

जब दिन में हम थक जाते
विश्राम धरा पर करते।
झकझोर पवन था देता
थे सुमन विटप से झरते।।

उन्मुक्त गगन के नीचे।
सुख से रातें कट जातीं।
अम्बर की तारावलियाँ
पुलकित रहना सिखलातीं।।

थी दूर-दूर तक फैली
वन के भीतर हरियाली।
काँटों सँग खेल रही थी
कुसुमों की मनहर लाली।।

उस गहन विपिन के भीतर
पथ टेढ़े मेढ़े जाते।
यात्राएँ दुर्गम होती
थे पथिक बहुत अकुलाते।।

थे जीव विषैले मिलते
गजराजि वहाँ थी फिरती।
जल-खग की विपुल कतारें
निर्मल झीलों में तिरती।।

कल-कल करती थी नदियाँ
नग-शिखर व्योम को छूते।
अगणित गह्वर थे पथ में
हम बढ़ते निज बलबूते।।

तम भरी गुफाएँ मिलतीं
हम सत्वर चलते जाते।
अम्बार लगे विघ्नों के
विचलित न हमें कर पाते।।

जग को सुखमय करने को
बन सम्बल किरणें आतीं।
उर में आभा को भरकर
तम को थीं दूर भगातीं।।

अनजानी पगडण्डी सी
हैं जीवन की भी राहें।
है लक्ष्य उन्हें मिल जाता
जो सच्चे मन से चाहे।।

वन के सब हिंसक प्राणी
थे परम मित्र बन जाते।
खग कुल कलरव करते थे
श्यामल घन थे घहराते।।

बल खाती नभ में चपला
पल भर पथ ज्योतित करती।
थीं शीत पवन की लहरें
दोनों की पीड़ा हरती।।

श्रद्धा-पूरित मानस से
सोमा ने मुझे निहारा।
बोली कर लें अभिवादन
मीकाङ सलिल की धारा।।

सरिता जननी जन जन की
हम इससे जीवन पाते।
आभार प्रदर्शित करके
हम हैं इसके गुण गाते।।

इस तटिनी के तट पर हैं
लघु खण्ड स्वर्ण के मिलते।
स्वर्णिम सूर्योदय में वे
बन स्वर्ण-दीप ज्यों जलते।।

है काल तुल्य ही अविरल
सरिता जल बहता रहता।
गतिमान रहे यह जीवन
सन्देश मनोरम कहता।।

धनधान्य दायिनी माता
नगराजि मध्य हहराती।
हैं इसकी तीव्र तरङ्गें
मन में अमृत छहराती।।

मीकाङ नदी का जल था
सबका दुःख हरने वाला।
सन्तुष्ट हुए हम दोनों
जब नीर कण्ठ में डाला।।

□□

पथ में रुक जन-पीड़ा को
मिल बाँट लिया करते थे।
रातों में कहीं ठहर कर
विश्राम किया करते थे।।

था एक दिवस बस्ती में
दोनों ने डेरा डाला।
हम थक कर चूर हुए थे
बढ़ गयी भूख की ज्वाला।।

हम दोनों का निर्णय था
दो दिवस वहीं ठहरेंगे।
सबका सुख-दुःख बाँटेंगे
समरस बनकर छहरेंगे।।

मुझको विकार संस्कृति का
हर ओर पड़ा दिखलायी।
सन्ताप हुआ था मुझको
सोमा भी थी सकुचायी।।

बढ़ते अनजान डगर पर
अब हम कम्बुज से आगे।
मीनाम क्षेत्र में पहुँचे
थे पुण्य हमारे जागे।।

हम ऊँचे-नीचे पथ पर
थे सँभल-सँभल क़र चलते।
था धैर्य हमारा साथी
हम बाधाओं को दलते।।

शहतूत लाख पाइन के
बहु वृक्ष मार्ग में मिलते।
अनुभव-रवि की किरणों से
मानस-पङ्कज थे खिलते।।

सन्ध्या खिसकी चुपके से
आयी थी रजनी रानी।
कुमुदिनी पुलक मुसकायी
उतरी कौमुदी सुहानी।।

ललनाएँ पड़ीं दिखायी
यौवन के मद में माती।
अधरासव पी तरुणों की
थी टोली नहीं अघाती।।

थीं अग्नि-पुञ्ज की लपटें
दिखतीं वृक्षों के नीचे।
नर्तन-गायन आकर्षक
पथिकों के मन को खींचे।।

वल्कल वसनों से भूषित
थी देह-छटा पगलायी।
सौन्दर्य-शिखर पर चढ़कर
थी मणि-आभा इठलायी।।

रसमाती रशना धीरे
मधु-मिश्रित बोल सुनाती।
ढोलक पर पड़ती थापें
तन में लचकन आ जाती।।

झुककर प्रियतम ने पग में
था नूपुर सुभग पिन्हाया।
कर मेरी रानी नर्तन
दृग से सङ्केत बताया।।

निस्तब्ध निलय में रँगती
चन्द्रिका चित्र यह किसका?
कामना-कली थी खिलती
लेकर नवरूप मिलन का।।

ढोलों की मर्म विदारक
जब ध्वनियाँ गूँज रही थीं।
तब रजनी रुक रुक नभ के
सब मोती लूट रही थी।।

मधु-बाला की लाली से
थी दिशा ठगी सी जाती।
पुष्पित तन्द्रिल कानन में
किस रूप-नगर की थाती।।

कुञ्जों के भीतर जाकर
थे विकल युवक छिप जाते।
'कहते ढूँढ़ो तो जानें
हम कहाँ किधर हैं जाते??

रजनी की रस वेला में
छवि का यौवन लहराये।
नूपुर से निकले रव से
रस-राग-रङ्ग भर आये।।

वे सरपट दौड़ी जातीं
उर प्रियतम को पाने को।
अब देख लिया है तुमको
'आयी यह बतलाने को'।।

थी कर्णफूल की आभा
आगण्ड पटल पर खिलती।
उन्नत वक्षोजों पर थी
बहुवर्णी माला हिलती।।

चन्द्रिका बिछी कानन में
चल पड़ी मदिर पुरवाई।
थीं तन्द्रिल कोमल कलियाँ
भ्रमरावलियाँ अलसाईं।।

नयनों में नेह-निमन्त्रण
सङ्केतों में थी ज्वाला।
वाणी में भरी सरसता
थी अङ्ग-अङ्ग में हाला।।

थे मस्त सभी नर–नारी
सब करते थे मनमानी।
रँगरलियाँ निरख–निरख कर
मुसकायीं सोमा रानी।।

कानन में सभी विकल थे
रति ने सौन्दर्य सँवारा।
मेरी सोमा ने मुझको
बङ्किम चितवन से मारा।।

शशि कला गगन मण्डल में
तारों के हार पिरोती।
भूतल पर रजनी रानी
रह रह कर पुलकित होती।।

अविरल चुम्बन से पीड़ित
अधरों पर स्वेद चमकते।
सौन्दर्य–सिन्धु सीपी में
मोती अनवरत झलकते।।

अन्तर में प्यास भरी थी
धधकी थी भीषण ज्वाला।
था कामदेव ने चुपके
कुसुमों का तीर निकाला।।

वासना–सिन्धु की लहरें
कामना–कूल तक आतीं।
जल क्रीड़ा रत जोड़ों को
थीं मादकता दे जातीं।।

नक्षत्र-लोक में फिरती
करती थी जो अठखेली।
थी दूर क्षितिज में डूबी
वह चन्द्रकला अलबेली।।

थी अशुभ काम की क्रीड़ा
उनका न हुआ परिणय था।
वैदिक-संस्कृति न वहाँ थी
दिखता न उदात्त प्रणय था।।

विश्राम कर चुके थे हम
था आगे और निकलना।
प्रातः रवि का वन्दन कर
प्रारम्भ किया फिर चलना।।

सोमा के साथ चला मैं
चाहता लक्ष्य को पाना।
समरसता रहे जहाँ पर
ऐसा संसार बसाना।।

लालसा यही थी मन में
सबका दुःख सदा बटाऊँ।
हो जाये जब जग सुखमय
तब मैं भी कुछ सुख पाऊँ।।

मिल जाते सुजन डगर में
निज जीवन-गाथा-गाते।
हम भी उनकी बातों को
थे सुनते नहीं अघाते।।

उस विजन विपिन में बिखरी
रजनी रानी की अलकें।
प्रियतम को खोज रही थीं
प्रेयसि की भींगी पलकें।।

मृगपति पञ्जर में पड़
थी विवश मृगी अकुलाती।
झुरमुट के बीच अचानक
कोई रह-रह चिल्लाती।।

यह कन्या का क्रन्दन है
सोमा ने मुझे बताया।
उसकी रक्षा करनी है
उसने मुझको समझाया।।

जब हम पहुँचे तब पाया
थी सिसकी रुक-रुक आती।
ज्यों आहत कुचली ऊषा
हो अन्तर पीर सुनाती।।

दिख पड़ी लुटी सी हमको
द्वादश वर्षों की बाला।
दो पुरुष खड़े मुसकाते
पीड़ा ने डेरा डाला।।

हम दोनों के नयनों में
दहका धधका अंगारा।
था तीक्ष्ण बाण से मैंने
दोनों पुरुषों को मारा।।

मैं बोला, मेरी भगिनी
मैं हूँ अब तेरा भ्राता।
है व्यथित हुआ मन मेरा
मैं शोषण देख न पाता।।

वह नर-पिशाच है पापी
यह अधम कृत्य जो करता।
मानवता के घट को जो
अपने पापों से भरता।।

पन्नग-फण सा सिर कुचलें
वह श्वाँस न लेने पाये।
अबला के कोरे आँचल
में जो भी दाग लगाये।।

पीड़ा से बोझिल पुतली
थी नयन-जलधि में तिरती।
मोती बन आँसू बूँदें
थीं बरबस नीचे गिरतीं।।

आँसू की बूँदें कहतीं
संसृति की करुण कथा को
जग का मङ्गल कब होगा
हर लेगा कौन व्यथा को??

वेदना-कोख से जनमी
आँसू की बूँदे होतीं।
अभिशप्त तप्त जीवन को
अविरल रहती हैं धोती।।

छिप गयीं किधर की कब की
उल्लास रास की बातें।
दिन केवल कुलिश गिराते
अब अन्धी होती रातें।।

कुछ घड़ियों के जीवन में
हम अमर-कथा को गायें।
अन्तर से अपना सबको
शोभन संसार बसायें।।

इस समय-उपल के उर पर
हैं कितनी लहरें आतीं।
क्षण भर के मधुर मिलन में
उपहार प्यार दे जातीं।।

फिर जातीं जलधि-हृदय में
वे लौट कभी क्या पातीं?
उस एक सरस चुम्बन का
मङ्गल इतिहास बनातीं।।

तन-इच्छा के पीछे ही
क्यों उर को भूले जाते।
तुम मिथ्या सुख के भ्रम में
विष-गृह में चरण बढ़ाते।।

उस कन्या के गृह जाकर
सोमा ने धैर्य बँधाया।
'हैं हम सब तव शुभ चिन्तक'
कह उसको गले लगाया।।

हम आगे बढ़ते जाते
जन जीवन सुखमय करते।
जो व्यथित हमें मिल जाते
हम उनकी पीड़ा हरते।।

अम्बर प्रसन्न दिखाता था
तारों के रतन सजाये।
हिमकर था अनुनय करता
रजनी को हृदय लगाये।।

धानों के फैले पट में
थी धरती छिपती जाती।
हो हरित वसन से आवृत
सौन्दर्य विशेष दिखाती।।

उत्तुङ्ग ताल के तरुवर
हिल ताल मधुर थे देते।
सिर पर चन्द्रिका धवलिमा
शोभा धारण कर लेते।।

मीनाम नाम सरिता के
तट पर था अनुपम मेला।
आ गयी धान्य देवी के
पूजन की पावन वेला।।

करबद्ध विनत सिर करके
कन्याएँ करतीं वन्दन।
श्री देवी के चरणों में
अर्पित उन सबका तन-मन।।

दो वृद्धों को लेकर के
डोंगी सरिता में तिरती।
कुछ ऊँची चञ्चल लहरें
रहती थीं उठती गिरती।।

उत्सव का कारण पूछा
वृद्धों को निकट बुलाकर।
वे लगे कहानी कहने
तब हमको पास बिठाकर।।

थीं विष्णु-प्रिया कल्याणी
देवी 'श्री' सञ्ज्ञा वाली।
छहराती ललित छटाएँ
उनके चरणों की लाली।।

अति शीतल मन्द हवाएँ
क्यों करती मनमानी थीं।
ज्योत्स्ना सङ्ग में पुलकित
खिल रही निशा रानी थी।।

सरिता में थी वह देवी
निर्वसन गात हो उतरी।
उसके अरुणिम अधरों से
थी झङ्कृत मधु स्वर लहरी।।

उस समय गगन से उतरा
था एक असुर बलशाली।
फिर उसने नीचे देखा
नव देह कान्ति मतवाली।।

कामुक, पापी ने सहसा
दिव्या को मलिन बनाया।
करनी का अधम अपावन
था कुफल मरण वह पाया।।

देवी ने तत्क्षण छोड़ी
वह परम अशुचिमय काया।
शव गया धरा में गाड़ा
प्रकटी देवी की माया।।

उस शव मिट्टी के ऊपर
बहुलता-पुष्प उग आये।
था 'सबह' धान का पौधा
नाभी से मूल लगाये।।

बन धान परम हितकारी
सबके दुःख को हर लेता।
धन-धान्य प्रभूत प्रदायक
संस्फूर्ति नवल भर देता।।

इस सबह धान बेहन को
'गिरिनाथ' कहा करते हैं।
देवीका रूप समझ कर
सब मगन रहा करते हैं।।

रोपण के बाद इसे सब
'गङ्गा देवी' कहते हैं।
इस देवी की सेवा में
प्रतिपल तत्पर रहते हैं।।

जब दाने आते हैं तब
इसको 'श्री ताण्डुलि' कहते।
श्री देवी की पूजाकर
सब लोक प्रफुल्लित रहते।।

है उसकी महिमा से ही
हमने कुछ वैभव पाया।
देवी की संस्मृति में ही
यह उत्सव का दिन आया।।

है अन्न प्राण हम सबका
वह शस्य-विभव की रानी।
उस देवी की महिमा की
यों पूरी हुई कहानी।।

उस लम्बी वन-यात्रा में
अनुभूति पुलक भर लायी।
हम बढ़े और कुछ आगे
गज श्वेत पड़े दिखलायी।।

उज्ज्वलता श्वेत गजों की
दृग को थी बरबस हरती।
उन्नत मस्तक से जिनके
मदधारा अविरल झरती।।

मीनाम नदी के जल में
गज-शावक खेल रहे थे।
भर शुण्ड-विवर में पानी
आमोद उड़ेल रहे थे।।

खग-कुल कूजे तरुवर पर
शुचि उषा गगन से आयी।
करुणा परिपूरित वाणी
फिर हमको पड़ी सुनायी।।

''मैं जाता बुद्ध-शरण में
मैं सङ्घ-शरण में जाता।
मैं राग-द्वेष का त्यागी
मैं धम्म-शरण अपनाता।।

तज मोह-लोभ का चक्कर
मैं आगे चरण बढ़ाऊँ।
अष्टाङ्ग मार्ग अपनाकर
मैं शुद्ध बुद्ध हो जाऊँ।।

इस जग की पीड़ा को मैं
अपनी ही पीड़ा जानूँ।
निर्वाण-लाभ पाने का
दृढ़ लक्ष्य हृदय में ठानूँ।।

तन-मन से हिंसा त्यागूँ
हर जन को गले लगाऊँ।
सब बौद्ध-धर्म अपनायें
सबका दुःख दूर भगाऊँ"।।

युवतियाँ विविध सुमनों से
अद्भुत अल्पना बनातीं।
थी वृद्ध पुरोहित टोली
मृदु स्वर में गीत सुनाती।।

फिर रक्षा-सूत्र वलय में
थे कुसुम-भूमि सब करते।
नरपति भी श्रद्धा मण्डित
हो अवनत प्रणमन करते।।

उत्सव के अन्तिम क्षण में
था धान लुटाया जाता।
कृषकोन्नति का शुभ लक्षण

आमोद मनाया जाता।।
है अन्न भरे जीवन में
लक्ष्मी का स्नेह विलसता।
उसकी अनुपम अनुकम्पा
भरती रहती समरसता।।

मीनाम पार करके हम
आगे बढ़ते जाते थे।
विश्राम न हेतु हमारा
हम दुःख में सुख पाते थे।।

लहराकर हमें बुलाता
था इरावदी का पानी।
अनजानी राहें लगतीं
मुझको जानी पहचानी।।

मार्तण्ड तीव्र तपता था
थे उष्ण श्वॉस हम लेते।
था कण्ठ शुष्क हो जाता
थे स्वेद विकल कर देते।।

यात्रा-पीड़ा से थककर
सोमा ने मुझको देखा।
झुलसन से थी खिंच जाती
मुख पर कष्टों की रेखा।

बीहड़ ऑधी में भी हम
प्रायः थे चलते रहते।
जलधर के कटु गर्जन को
यों ही हम दोनों सहते।।

हे देव! बता दे मुझको
कैसी है तेरी माया?
यदि झुलसा जाता कोई
तो कोई पाता छाया।।

दिन बीता चलते-चलते
गोधूलि-वेला आयी।
बस्ती में मस्ती लेते
कुछ जन थे पड़े दिखायी।।

नर्तन-गायन-वादन रत
पुलकित थे सब नर-नारी।
हमने सोचा उत्सव में
हो सहभागिता हमारी।।

सोमा के साथ गया मैं
उन लोगों की टोली में।
स्वागत का भाव भरा था
उनकी कर्कश बोली में।।

क्रोधी स्वभाव के थे वे
आचरण बहुत रूखे थे।
हम दोनों थके हुए थे
हम दिन भर के भूखे थे।।

लोगों ने हम दोनों को
पर्णासन पर बैठाया।
स्वागत में सहज हृदय से
भोजन का थाल सजाया।।

भोजन की थाली में से
दुर्गन्धि मुझे थी आयी।
मैं कौर न उठा सका था
आयी मुझको उबकाई।।

पहले अपने मन ही मन
था विधि को मैंने कोसा।
फिर था सोमा से पूछा
है यह क्या गया परोसा??

तब सोमा बोली मुझसे
धीरे से कोमल वाणी।
"हैं बड़े चाव से खाते
नरमांस यहाँ के प्राणी।।

यह मानव-माँस रखा है
हे आर्य! आपके आगे।
फल अन्न दुग्ध दुर्लभ है
इनसे न आप कुछ माँगे।।"

मन दुःखी हुआ था मेरा
मेरा अन्तस्तल रोया।
कुछ खाया-पिया न मैंने
बरबस अपना मुख धोया।।

मैंने मानव-हत्या पर
अपनी आपत्ति जतायी।
सोमा भी खिन्न हुई थी
वह दिखती थी अकुलायी।।

मैंने उनको समझाया
इस बर्बरता को रोको।
मत महाकाल के मुख में
तुम मानवता को झोंको।।

सब मानव एक सदृश हैं
सबमें समरसता-नाता।
क्यों मांस एक मानव का
दूसरा मनुज है खाता।।

सोमा उनकी भाषा में
समझाकर उनसे बोली।
"मत खेलो बन्धु हमारे
मानव-शोणित से होली।।

नर-वध न बन्द यदि होगा
आयेगी शान्ति कहाँ से।"
उनके उर को परिवर्तित
करके हम चले वहाँ से।।

हम दोनों दुर्गम पथ पर
थे आगे बढ़ते जाते।
थे चण्ड प्रचण्ड बवण्डर
विचलित न हमें कर पाते।।

जब मेघ घटा के तम में
डूबा होता जग सारा।
घन-विद्युत रेखा करती
तब मार्ग प्रशस्त हमारा।।

मूसलाधार वर्षा भी
बढ़ते पग रोक न पाती।
सत्साहस देख अनोखा
चपला रह रह मुसकाती।।

मग में गिरकर तरुवर भी
अवरोध उपस्थित करते।
अहि की फुफकारों में हम
बढ़ते, अविरल डग भरते।।

साधना बलवती अपनी
मन में धीरज भर देती।
उलझन वेला में सत्वर
श्रम की पीड़ा हर लेती।।

श्यामा रमणी सी आतीं
पर्जन्य-देव बालाएँ।
नर-नारी के तन-मन में
मद मधुर विकार जगायें।।

जब पड़ती झींसी धीरे
तन-मन कम्पित हो जाता।
तब अलसाये यौवन को
चुपके से कौन जगाता??

आ तीव्र पवन का झोंका
तन को झकझोर रहा था।
उत्पात मचा वर्षा का
मन को हलकोर रहा था।।

वन की सारी ओषधियाँ
थीं प्राणवती हो जाती।
मेघों से नव जीवन पा
जीवन दायिनि बन जातीं।।

वह मदिर सरस पावस थी
मन में ज्वाला धधकाती।
सोमा की रोमावलियाँ
मनसिज को छेड़ जगाती।।

मैं देता मौन-निमन्त्रण
वह नयन झुका लेती थी।
स्वीकृति के सङ्केतों से
वह प्रति उत्तर देती थी।।

उसको आती थी व्रीड़ा
थे स्वेद-विन्दु कुछ तन पर।
उमड़ी यौवन-सरिता में
बढ़ गया बोझ था मन पर।।

उन्मत्त तरङ्ग लिये वह
मद-पान करा देती थी।
चम्पा की कोमल कलियों
का रूप चुरा लेती थी।।

मद-मत्त हुआ मैं बोला
अयि दिव्य रूप की रानी।
कलिका को छेड़ रहा क्यों
मधुकर करता मनमानो।।

तुम झीने पट को पहने
कर उत्तरीय को नीचे।
प्रतिपल अन्तर-धरती को
ज्यों सुधा-सिन्धु से सींचे।।

तव मादक मुख से बाले
कुसुमों का कोश लजाये।
ऊषा खग कलरव मिस से
तेरी गुण गाथा गाये।।

घन कुन्तल के पाशों से
है कठिन कौन सा बन्धन।
जिसमें आजीवन बँधने
को ललचाता प्रेमी मन।।

रक्तारविन्द सी दिखती
आभा तेरे अधरों की।
मकरन्द खोजती फिरती
टोली मन के भ्रमरों की।।

लहरा कर यौवन-नग से
छवि-झरना झर-झर झरता।
उन्मत्त - मदन - अन्तर्मन
अविरल अवगाहन करता।।

जब निशि लेती अँगड़ाई
निशिपति अधीर हो जाये।।
दे नयनों से आमन्त्रण
कह किसको कौन बुलाये??

कह दो अम्बर पर किसने
रतनों को है बिखराया?
अनगिन मुक्ता-लड़ियों का
यह कोश कहाँ से आया??

मिलकर कुसुमों ने जैसे
किञ्जल्क कोश बिखराये।
वह गन्धि पवन फिर लेकर
हर दिशा बॅहकता जाये।।

जो दुर्लभ क्षणिक जगत में
अन्तर जो चाहे मेरा।
आकर्षण-विन्दु अलौकिक
उर में है डाले डेरा।।

सोमा-ग्रीवा में शोभित
हीरों का हार मचलता।
कुण्डल कपोल पर विकसित
था स्वर्ण-प्रकाश दमकता।।

हम दोनों के अन्तर में
था वीणा कौन बजाता।
था कौन मौन जीवन में
हॅस हॅस कर फूल सजाता??

आनन्द-सिन्धु लहरों से
सुख-मणियाँ अनगिन लायें।
अर्पण करके प्राणों का
अद्‌भुत संसार बसायें।।

आयें न लक्ष्य-पथ में अब
नैराश्य विघ्न बाधाएँ।
सहकर भी कितनी पीड़ा।
मधु-राग प्रीति के गायें।।

यदि यौवन की घड़ियों का
उपयोग भला हो जाता।
जग की जीवन-गाथा में
अध्याय नया जुड़ जाता।।

कर सेवा मानवता की
जीवन को अमर बनायें
दृढ़ सङ्कल्पित मन से हम
जग-मङ्गल व्रत अपनायें।।

वह प्रणय बना मङ्गलमय
पीड़ा की उस छाया में।
बन तेज-पुञ्ज था दीपित
हम दोनों की काया में।।

जग में आलस्य भरा था
कुछ सोये थे कुछ जागे।
सब नित्य क्रिया निपटाकर
हम बढ़े और कुछ आगे।।

रवि से मिलने को ओढ़ा
ऊषा ने अरुणिम अञ्चल।
मुसकान भरी कलियों में
था पवन हुआ अति चञ्चल।।

जाने क्यों कौन अचानक
मेरे ऊपर था टूटा।
थी नोक गड़ी भाले की
सिर था पत्थर से फूटा।।

आक्रमण किया था किसने
मैं यह था जान न पाया।
दिख पड़ा झुण्ड शबरों का
जिसने उत्पात मचाया।।

प्रत्युत्तर मैं मैंने भी
खर शर से वार किया था।
कुछ शबर भगे चिल्लाये
कुछ का संहार किया था।।

मेरे तन के घावों पर
सोमा थी लेप लगाती।
मेरी दुःखदायक पीड़ा
थी सुखदायक बन जाती।।

अति उच्च वृक्ष थे पथ में
थे जिनके पर्ण नुकीले।
नव देवदारु इठलाते
थे लम्बे और गठीले।।

सागौन झूमता मद में
चीड़ों की झुकती डाली।
सुरभित रसाल, मञ्जरियाँ
मधुकर करते रखवाली।।

वन के झुरमुट के पीछे
थी नदी पड़ी दिखलायी।
हम गये निकट सरिता के
देखा, वह थी उफनायी।।

नभ छूने को उठ जाती
थी इरावदी की धारा।
कितने प्राणी-सङ्कुल का
वह तटिनी बनी सहारा।।

सरिता-सिकता-कण-कण में
युग-सँस्कृतियाँ हैं बिखरीं।
पीयूष-स्रोत सी लहरें
इसकी रहती हैं निखरीं।।

शस्यों का अञ्चल डाले
थी हरी भरी वह धरती।
प्राणों का पोषण करके
जो भूख-प्यास है हरती।।

नाचती वेणु के वन में
थी मधुर सुरों की रानी।
उसके नूपुर की ध्वनि थी
लगती जानी पहचानी।।

जब पवन तीव्र गति से चल
आता कदली के वन में।
हरियाली खूब पुलकती
नर्तन भरती तन-मन में।।

दर्शन पा इरावदी का
था हमने शीश झुकाया।
अपनी पावन गङ्गा को
उसकी धारा में पाया।।

दारुण यात्रा-सुख प्रायः
मुझको हर्षित कर जाता।
जब पीड़ित जन मिल जाते
मन पीड़ा से भर जाता।।

पीड़ा के पथ पर चलता
विघ्नों के गिरि पर चढ़कर।
गुरु की आज्ञा का पालन
लगता प्राणों से बढ़कर।।

आसक्ति, मोह-माया को
जग के बन्धन को तोड़ा।
सेवक का भाव सँजोये।
कितनों से नाता जोड़ा।।

नभ से ऊँचे पर्वत को
लाँघा आनन-फानन में।
नद-लहरों के मद-मर्दन
की शक्ति भरी तन-मन में।।

उस सङ्कट भरे विपिन में
था हँसता और हँसाता।
सूने भयमय मग में मैं
था चलता चलता जाता।।

बढ़ता जाता निज गुरु की
आज्ञा का सम्बल लेकर।
इस क्षण भङ्गुर जीवन में
कुछ पाता सब कुछ देकर।।

वह कौन शक्ति है अविरल
जो लक्ष्य-मार्ग दिखलाती।
तमसावृत पथ में आकर
थी मन को धैर्य बँधाती।।

जब सुमन सदृश शिशुओं को
ज्वर-ताप प्रचण्ड जलाता।
दारुण कराह बढ़ जाती
मन था उन्मन हो जाता।।

उर था छलनी हो जाता
बरबस करुणा उमड़ी थी।
निरुपाय बिलखती रहती
पीड़ा असहाय खड़ी थी।।

उपचार विशेष नहीं थे
इसलिए न वे बच पाते।
कुछ सुरभि जगत को देकर
प्रायः प्रसून मुरझाते।।

उपयोग वनौषधियों का
था मैंने उन्हें सिखाया।
प्राकृतिक चिकित्सा विधि को
कुछ लोगों को बतलाया।।

वृद्धों-शिशुओं-अबलाओं
सबको उपचार सुगम हो।
यह चिन्ता हमें सताती
कैसे सबके दुःख कम हों।।

बहु ओषधि ज्ञान सँभालो
अयि सोमा! सङ्गिनी मेरी।
कुछ ऐसा करें उपक्रम
सुख-स्वास्थ्य लगाये फेरी।।

कर दीन जनों की सेवा
हम जीवन सफल बनायें।
तम की अन्धी नगरी में
शुभ किरणों को फैलाएँ।।

जग में सब लोग सुखी हों
सब बन जायें हितकारी।
सब भेदभाव को त्यागें
मुसकाये धरती सारी।।

श्रुति-संस्कृति विकसे कैसे
संसृति के हर कोने में।
हम बनें सहायक कैसे
सबके उन्नत होने में।।

सब वेद अशेष पढ़े हों
सब स्वस्थ तेज धारी हों।
नव मलयानिल के सौरभ
जग के हित सुखकारी हों।।

जीवन के अन्तिम क्षण तक
हम सबको स्नेह लुटायें।
रमणीय दिव्य राका में
नित मानवता मुसकाये।।

□□

हम अति सन्तुष्ट हुए थे
कर इरावदी की सेवा।
तन-मन परिपुष्ट हुए थे
अनुभव का क्षेत्र बढ़ा था।।

थीं हम दोनों के मन में
आती कम्बुज की यादें।
अति शक्ति भरी थी तन में
होते उतावले थे हम।।

मन में विचार यह आया
अब हम कम्बुज को लौटें।
मैंने था चरण बढ़ाया
सोमा के साथ मुदित मन।।

सुख-सौरभ रहें लुटाते
मुकुलित अम्बुज कम्बुज के।
हम प्रभु से यही मनाते
प्रत्यावर्तन के क्षण में।।

सम्प्रति सत्वर कल्याणी
अपनी धरती हो जाये।
सत् पन्थ गहें सब प्राणी
श्रुति-संस्कृति रहे विकसती।।

हम शीघ्र लौटकर आये
कम्बुज की शुचि धरती पर।
सबने प्रसून बरसाये
मुझपर सोमा रानी पर।।

मैंने कृषि कार्य सिखाया
कम्बुज की प्रिय जनता को।
था विविध अन्न उपजाया
अनवरत अथक श्रम करके।।

मैंने उनको बतलायी
वस्त्रोत्पादन की विधि भी।
थीं उन्हें समझ में आयीं
आवश्यक सभी कलाएँ।।

अनुपम औषधिशालाएँ
मैंने अनगिन बनवायीं।
सारी औषधियाँ पायें
कम्बुज के पीड़ित प्राणी।।

खुल गयीं पाठशालाएँ
पढ़-लिख कर बनें गुणी सब।
सब लोग सभ्य बन जायें
गुरु की सेवा में रहकर।।

सेवा करना सिखलाया
सेवा से ईश्वर मिलता।
मङ्गलमय पथ दिखलाया
जिस पर चलना न कठिन था।।

शिव-मन्दिर था बनवाया
मैंने पर्वत के ऊपर।
शिवलिङ्ग सुभग रखवाया
कर विधिवत प्राण-प्रतिष्ठा।।

जीवन मङ्गलमय करना
मैं प्रलयङ्कर से कहता।
अविरल चेतनता भरना
अलसाये जन-गण-मन में।।

जब कभी अभागा पापी
शिव के सम्मुख है जाता।
हो जाता महा प्रतापी
उसकी महिमा सब गाते।।

असमर्थ हमारी वाणी
तव गुण-गाथा गाने में।
तेरी करुणा कल्याणी
हर प्राणी को मिल जाये।।

बहु देवालय बनवाये
जप-तप-वन्दन करने को।
सुविधानुसार कर पायें
सब इष्ट-देव की पूजा।।

बहु देवों की प्रतिमाएँ
थीं देव-गृहों में शोभित।
बहुविधि से सब गुण गायें
आराध्य देव के अपने।।

शोभित थीं युगल भुजाएँ
प्रायः सुर-प्रतिमाओं की।
तो चतुर्भुजी प्रतिमाएँ
थीं कहीं सुछवि बिखरातीं।।

नटराज मूर्ति अलबेली
नर्तन -मुद्रा में दिखती।
दुर्गा की मूर्ति अकेली
सबका मन मोह रही थी।।

थी कहीं चक्रधारी की
प्रतिमा सबका दुःख हरती।
तो प्रतिमा गिरिधारी की
थी कहीं सराही जाती।।

वेदों के साथ सुहाती
थी चतुरानन की प्रतिमा।
नरसिंह-मूर्ति थी भाती
दर्शन करते नर-नारी।।

कुछ प्रतिमाएँ बतलातीं
मत्स्यावतार श्री हरि का।
वाराहमूर्ति मिल जाती
कुछ देव-गृहों में सबको।।

जनता में चाहे जाते
अति सुभग देव-मन्दिर थे।
हर ओर सराहे जाते
थे विपुल कला-मन्दिर भी।।

सच मूर्ति-कला निखरी थी
खग-पशुओं की प्रतिमा में।
पावन आभा बिखरी थी
पुलकित थी प्रकृति चितेरी।।

मन को झकझोर रहा था
अनुपम मयूर का नर्तन।
तो खीस निपोर रहा था
मर्कट-दल तरु शाखा पर।।

थे कहीं कपोत-कपोती
शुक और सारिका प्यारी।
थीं कहीं हिरणियाँ सोतीं
थे कहीं शशक सकुचाते।।

हाथी चिग्घाड़ रहे थे
यदि कहीं झुण्ड में अपने।
तो सिंह दहाड़ रहे थे
वन सघन सुसज्जित दिखते।।

सब द्वार-पाल थे रक्षक
देवालय सुव्यवस्थित थे।
थे बने सबल संरक्षक
मन्दिर के सभी पुजारी।।

हरता विषाद था मन का
शुभ नाट्य-शास्त्र का सौष्ठव।
नर्तन-गायन-वादन का
सङ्गीत-शास्त्र का प्रचलन।।

मैंने सबमें फैलायी
आर्यों की वैदिक संस्कृति।
थीं स्वर्ण भूमि तक आयीं
भारत की शिल्प-कलाएँ।।

□□

संस्कृति से, शिल्प-कला से
हर्षित थी सोमा रानी।
जनहित में उस सरला से
मैं परामर्श लेता था।।

था वेद-प्रचार कराया
कम्बुज की पुण्य धरा पर।
था यज्ञ-कर्म सिखलाया
जिससे श्रुति-संस्कृति विकसे।।

ब्रहमा - होता - उद्‌गाता
अध्वर्यु-पुरोहित-पण्डित।
मैं था इनका निर्माता
बहु यज्ञ यहाँ हो जिससे।।

था सोम-यज्ञ करवाया
सोमा की सहमति पाकर।
आमन्त्रण था भिजवाया
अति निकट-दूर देशों को।।

नृप विविध देश से आये
उस सोम-यज्ञ में मेरे।
जीवन को सफल बनायें
यह भाव भरा था मन में।।

सब लोग स्वर्ग-सुख पायें
दुःख दें न त्रिताप किसी को।
पथ मङ्गलमय को जायें
निष्कण्टक हो जग सारा।।

वैदिक-मन्त्रों से धरती
अत्यन्त पवित्र हुई थी।
सब मनस्ताप थी हरती
वेदिका, पङ्ख सी शोभन।।

सोमा रानी को भाया
प्रस्ताव किया जो मैंने।
अपना दायित्व निभाया
यजमान बने हम दोनों।।

फिर दोनों ने ली दीक्षा
उस सोम-याग वेला में।
जीवन की कठिन परीक्षा
था लक्ष्य लोक-मङ्गल का।।

कीं अग्नि-चयन की विधियाँ
सम्पन्न सजग दोनों ने।
वेदों की अनुपम निधियाँ
दी पुरोहितों ने हमको।।

होता, ऋग्वेदोन्नायक
अध्वर्यु, यजुष उच्चारक।
था सामवेद का गायक
उद्‌गाता अति गुण शाली।।

होतीं सवनादि क्रियाएँ
उस सोम-याग में विधिवत।
मिटतीं सबकी विपदाएँ
सत्पात्र दान पाते थे।।

मैंने नारियल चढ़ाया
नर-बलि, पशु-बलि के बदले।
था हिंसा रहित बनाया
यज्ञों की परिपाटी को।।

ऋषिगण करते रहते थे
वेदों के पाठ निरन्तर।
मन्त्रार्थों को कहते थे
जिज्ञासा के होने पर।।

लोगों को समझाते थे
सूक्तों के अर्थ बराबर।
श्रोता-गण सुख पाते थे
मन्त्रों को हृदयङ्गम कर।।

व्याख्यान हुआ करते थे
यज्ञों के शुभ अवसर पर।
श्रुति-ज्ञानों से भरते थे
श्रोताओं के अन्तस्तल।।

श्रद्धालु एक था बोला
"हैं किसे प्रजापति कहते"।
उर उसका तुरत टटोला
मैंने उसको समझाया।।

जो सबसे पहले आया
विस्तृत धरती के तल पर।
जग का स्वामी कहलाया
वह देव प्रजापति अनुपम।।

अमरत्व-मृत्यु का स्वामी
जो जग का जीवन-दाता।
बलदाता अन्तर्यामी
वह देव प्रजापति प्यारा।।

है सूर्य प्रकाशित होता
नभ में जिसकी प्रभुता से।
जो प्रेम-बीज है बोता
कहलाता वही प्रजापति।।

"है पुरुष कौन कहलाता।"
यह प्रश्न किसी ने पूछा।
मैं था उनको समझाता
तब पुरुष-देव की महिमा।।

जो सहस नयन धारी है
हैं जिसके शीश हजारों।
जो पृथ्वी से भारी है
वह देव 'पुरुष' कहलाता।।

जो है, जो होने वाला
जो कुछ हो चुका जगत में।
सब कल्मष धोने वाला
है पुरुष सभी का कर्ता।।

सारे जग का निर्माता
जड़-चेतन सबका स्वामी।
है सबका भाग्य-विधाता
वह पुरुष विश्व का पालक।।

वह मूल-विन्दु है, उद्गम
नित पुरुष सभी तत्त्वों का।
उसमें ही करते सङ्गम
सब गोचर और अगोचर।।

नित अकथ रूप है जिसका
वह दिव्याभा से मण्डित।
आधार नहीं वह किसका
स्थावर-जङ्गम-जग का।।

कृपया मुझको बतलायें
"सब ब्रह्म किसे कहते हैं?
शुचि ज्ञान-पन्थ दिखलायें"
श्रद्धालु एक था बोला।।

मैं लगा उसे समझाने
उस पार-ब्रह्म की महिमा।
जन-मन को लगा रिझाने
जग-हेतु ब्रह्म-गुण गाकर।।

वह कारण-कार्य रहित है
है हर्ष न शोक तनिक भी।
उसमें कल्याण निहित है
वह पूर्ण काम हो रहता।।

है होती अक्षम वाणी
जिसका वर्णन करने में।
यह सृष्टि मधुर कल्याणी
जिसकी महिमा को गाती।।

मन की सीमा से आगे
चिन्तन-परिघा से बाहर।
उसकी महिमा से जागे
नयनों-कर्णों की क्षमता।।

है स्वयं गुप्त जो रहता
है शक्ति सभी को देता।
है नित्य जिसे जग कहता
हम जानें ब्रह्म उसी को।।

हैं जिसकी गाथा गाते
रवि-चन्द्र-पवन-नभ तारे।
उस परम ब्रह्म को पाते
हम अपने निर्मल उर में।।

है जो सञ्चालन करता
नित प्राण रूप बन सबका।
वह उसकी झोली भरता
कर्मों के निर्णय पर ही।।

सर्वत्र सर्वव्यापक जो
सच्चिदानन्द परमेश्वर।
अग-जग का संस्थापक जो
वह गुणागार-निर्गुण है।।

अखिलेश्वर एक निराला
बहु नाम-रूप हैं उसके।
सारे जग का रखवाला
वह पुरुष, प्रजापति ब्रह्मा।।

उस पार ब्रहम की चेरी
दिखलाती अद्‌भुत लीला।
वह जग की चतुर चितेरी
सब कहते उसको माया।।

अव्यक्त रहा करती है
वह तीन गुणों वाली है।
गुण-दोष कहा करती है
सर्वदा मौन हो करके।।

मोहित होते जग वाले
है ब्रह्म न मोहित होता।
पड़ते विषयों के पाले
सब माया के चक्कर में।।

मैंने अन्तर समझाया
जब ब्रह्म और माया का।
तब मङ्गल-पन्थ सुझाया
कम्बुज के नागरिकों को।।

हैं श्रेय-प्रेय दो राहें
किस पथ को हम अपनायें?
किसको हम अधिक सराहें?
भर्त्सना करें हम किसकी??

दोनों समीप आते हैं
दोनों करते आवाहन।
जब दोनों मिल जाते हैं
किस पथ को भला चुनें हम??

अज्ञानी सदा उलझते
दोनों के आकर्षण में।
दोनों को भिन्न समझते
जो परम विवेकी होते।।

गुण-दोष हृदय में गुनते
जो भली भाँति दोनों के।
वे श्रेय-पन्थ को चुनते
है प्रेय त्याज्य इस जग में।।

यह चिन्ता मुझे सताती
सब लोग सुखी हों कैसे?
मुझको सम्बल दे जाती
सङ्कल्पशक्ति दृढ़ मेरी।।

है लक्ष्य नहीं जीवन का
स्वर्गापवर्ग सुख पाऊँ।
दुःख मिट जाये जन-जन का
यह धरा स्वर्ग बन जाये।।

सुख का सागर लहराये
सब स्वस्थ सदाचारी हों।
पथ मङ्गलमय हो जाये
दुःख का न पता चल पाये।।

सबका कल्याण सदा हो
सब हँसे तथा मुसकायें।
धरती सबको सुखदा हो
सब काम सिद्ध हो जाये।।

हो कर्म-निरत जन-जीवन
शत वर्ष जिये हर मानव।
हों कर्म शील सब तन-मन
सबका जीना सार्थक हो।।

ज्यों सतत उजाला भरते
रहते रवि-शशि, निसि-वासर।
त्यों जग को सुखमय करते
हम बढ़ते रहें निरन्तर।।

तप-सत्य-ज्ञान से बढ़कर
जीवों की सेवा होती।
जन-सेवा में हो तत्पर
करुण-ममतामय होकर।।

कल्याण समूचे जग का
परमार्थ सौख्य में सम्भव।
हम निविड तिमिर में मग का
शाश्वत प्रकाश बन जायें।।

शशि-वरुण-सरित धाराएँ
पर्जन्य-पुरुष-रवि-ऊषा।
जीवन को सुखद बनायें
यम-सोम-विष्णु-पूषन मिल।।

सब जन समरस हो जायें
सब भेद-भाव मिट जाये।
मिल-जुलकर हाथ बँटायें
नित सुख-दुःख में सब सबके।।

कर्त्तव्य पन्थ पर चलकर
हम परम तत्त्व को जानें।
दिव्यानुभूति के बल पर
भव-शोक-सिन्धु तर जायें।।

जग के तममय आँगन में
आलोक विविध विधि बिखरे।
भू-अम्बर-गिरि-कानन में
श्रुति-संस्कृति अविरल विकसे।।

हैं मेरी स्वर्णिम थाती
स्वाती सँग बीती घड़ियाँ।
मेरी वाणी सकुचाती
कुछ और न कह पाती है।।"

उस महाप्राज्ञ की वाणी
इतना सब कुछ कह करके।
कौण्डिन्य-गिरा कल्याणी
विश्राम लगी फिर करने।।

शुभ लक्ष्य सभी को भाया
उत्तम मानव-जीवन का।
जन-सेवा-व्रत अपनाया
सङ्कल्प-भाव से सबने।।

□□

कौण्डिन्यकार डॉ० सुशीलकुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु' : एक परिचय

भारतीय- मनीषा के अप्रमेय प्रतिनिधि, सिद्ध समालोचक, प्रख्यात सामाजिक, मानवाधिकारों के प्रबल समर्थक, संस्कृत तथा हिन्दी भाषाओं के मर्मज्ञ, महाकवि डॉ० सुशील कुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु' (सरयूपारीण ब्राह्मण तथा साङ्कृत्य गोत्र) का जन्म ग्राम-भिलोरा, पत्रालय-नौसड़, जनपद-गोरखपुर (उ०प्र०) में १५ जुलाई १९५२ ई० को हुआ था। आपकी माता का नाम श्रीमती सूरत देवी तथा पिता का श्री सुमिरन पाण्डेय है। डॉ० पाण्डेय की पत्नी का नाम श्रीमती राजकुमारी पाण्डेय है। आपके दो पुत्र हैं सलिल कुमार पांण्डेय तथा समीर कुमार पाण्डेय। श्री राजकुमार पाण्डेय आपके भ्राता हैं। डॉ० पाण्डेय ने गोरखपुर विश्वविद्यालय से संस्कृत में १९७२ ई० में एम०ए० तथा १९७९ ई० में पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त की। सन्त तुलसीदास स्नातकोत्तर महाविद्यालय बरवारीपुर, कादीपुर, सुलतानपुर उ०प्र० के संस्कृत विभागाध्यक्ष, उपाचार्य, तथा शोधपर्यवेक्षक डॉ०पाण्डेय १६-१०-१९७३ ई० से निरन्तर अध्यापनरत हैं।

छात्र जीवन से ही साहित्य-सर्जना के प्रति सर्वथा समर्पित, उदात्त सारस्वत साधना हेतु विक्रमशिला हिन्दी विद्यापीठ भागलपुर बिहार द्वारा मानद् डी०लिट्०, मानवाधिकार के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिये भारतीय मानव अधिकार संस्थान, नई दिल्ली द्वारा आनरेरी प्रोफेसर पद पर नियुक्त, विलुप्त ज्ञान के नवीन क्षितिजों के गवेषक डॉ० पाण्डेय की यशस्विनी एवं कालजयी लेखनी से लगभग ग्यारह मौलिक कृतियों का प्रणयन हो चुका है। डॉ० पाण्डेय की रसस्विनी रचना 'प्रतीक्षा' (खण्डकाव्य १९८३ ई० में प्रकाशित) मनौवैज्ञानिक भावों की सफल प्रस्तुति है। डॉ० पाण्डेय ने दक्षिण-पूर्व-एशिया तथा भारत के प्राचीन सांस्कृतिक सम्बन्धों का अन्तरराष्ट्रिय अन्वेषण कर कौण्डिन्य तथा

अगस्त्य नामक विलक्षण महाकाव्यों की सर्जना की है, जिसे अनेक सिद्ध समीक्षकों एवं प्रसिद्ध इतिहासविदों ने भारतीय चेतना के धुँधले पृष्ठों का प्रकाशक तथा मौलिक खोज निरूपित किया है। डॉ० पाण्डेय के अन्य महाकाव्य शिवकाम की पृष्ठभूमि मानव-कामनाओं के विभिन्न आयामों की सरस प्रतीकात्मक प्रस्तुति है। नीरक्षीरविवेचिनी प्रतिभा सम्पन्न डॉ० पाण्डेय ने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' एवं 'कामायनी' : एक तुलनात्मक परिशीलन' में कालिदास एवं 'जयशङ्करप्रसाद' की अनेक मान्यताओं को साम्य-तुला पर तौलने का अद्‌भुत प्रयास किया है जिसकी सराहना अनेक साहित्य-रसज्ञों ने की है। डॉ० पाण्डेय की अन्य कृतियों में 'भावनिकुञ्ज' (विचार प्रधान लेख) 'कवि की बातें' (हास्य-व्यङ्ग्य प्रधान) 'इन्तजार' (उर्दू गीतों का सङ्ग्रह, लिपि देवानागरी) 'शब्द कहे आकाश' (सात सौ दोहों का सङ्ग्रह, अवध कमेण्ट वीक में धारावाहिक रूप से प्रकाशित तथा 'चिन्तन-चर्चा' (विभिन्न शोध-सङ्गोष्ठियों/सम्मेलनों में प्रस्तुत आलेखों का सङ्ग्रह) आदि हैं। डॉ० पाण्डेय प्रकाशित आठ कृतियों के सहलेखक हैं। डॉ० पाण्डेय के लगभग १५० आलेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। राष्ट्रकवि पद्‌मश्री सोहनलाल द्विवेदी तथा उत्तर प्रदेश सरकार के पूर्व मन्त्री प्रो० वासुदेव सिंह ने संयुक्त रूप से कारयित्री प्रतिभा सुमण्डित डॉ० पाण्डेय को १९-०१-१९८६ ई० को 'साहित्येन्दु' की उपाधि से सम्मानित किया था। तदुपरान्त डॉ० पाण्डेय को श्रेष्ठ साहित्य सेवा हेतु ४५ तथा मानव-अधिकार-विकास क्षेत्र में उच्च योगदान के लिए ०३ सम्मान मिल चुके हैं। इनमें संयुक्त राष्ट्रसंघ से सम्बद्ध कतिपय संस्थाओं तथा अन्तरराष्ट्रिय विश्वशान्ति प्रबोधक महासंघ (नयी दिल्ली) द्वारा 'विश्वहिन्दीसहस्राब्दि सम्मान', इण्टरनेशनल बॉयोग्राफिकल सेन्टर कैम्ब्रिज, इंग्लैण्ड तथा अमेरिकन बॉयोग्राफिकल इन्स्टीट्यूट, यू०एस०ए० आदि प्रमुख हैं।

भावयित्री प्रतिभा से सुसम्पन्न 'साहित्येन्दु' डॉ० पाण्डेय ०८ विश्व, ३५ राष्ट्र, २० प्रदेश तथा १५ स्थानीय/स्तरीय सम्मेलनों/सङ्गोष्ठियों में सहभागिता कर अपनी गुरु गवेषणा क्षमता का परिचय दे चुके हैं। डॉ० पाण्डेय के दोहों का पंजाबी भाषा में अनुवाद प्रकाशित हो चुका है।

डॉ० पाण्डेय जिज्ञासु एवं अध्यवसायी शिक्षक हैं। उनमें 'विद्यार्थी' भाव अद्यतन विद्यमान है, इसी कारण आप अनेक विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों में

मनोयोगपूर्वक अध्ययन करते हैं। डॉ० पाण्डेय अब तक १२ विश्वविद्यालयों में संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन कर चुके हैं। डॉ० पाण्डेय की कृतियों का लगभग ५० महामनीषियों द्वारा समाकलन किया जा चुका है। जिनमें दो ज्ञानपीठ, तीन पद्मभूषण, तीन पद्मश्री सम्मान प्राप्त तथा आठ कुलपति हैं। डॉ० पाण्डेय के पाँच साक्षात्कार प्रकाशित हो चुके हैं तथा गद्य-पद्य विषयक रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। विद्याव्यसनी 'साहित्येन्दु' डॉ० सुशीलकुमार पाण्डेय के आदर्श कवि कालिदास, तुलसीदास, जयशङ्कर 'प्रसाद' मिर्जा असदुल्लाह खाँ 'गालिब', बहादुरशाह 'जफर' तथा पर्सी बिशी शेली हैं।

कवि का सम्पर्क सूत्र-
सरस्वती शिशु मन्दिर मार्ग,
मुहल्ला-पटेलनगर,
पत्रालय-कादीपुर,
जनपद-सुलतानपुर (उ०प्र०)
पिन-२२८१४५
दूरभाष- ०५३६४-२३२६२७
मो० ९५३२००६९००

विदेश में वैदिक ज्ञान प्रसार की प्राचीन परम्परा

हृदयनारायण दीक्षित

भारत में अनेक विदेशी आये। अंग्रेज और इस्लामी ताकतें लूटने आईं, शासक भी बनीं। अनेक देशों के विद्वान भारतीय परम्परा दर्शन के आकर्षण में आये। भारत से अनेक मनीषी बाहर गये, वैदिक तत्वज्ञान और संस्कृति सभ्यता का प्रसार करने लेकिन हम भारतवासी अपने अतीत पर गर्व नहीं करते। यूरोपीय विद्वानों के प्रभाव में हमने प्राचीन भारत को एक अलग-थलग पिछड़ा समाज मान लिया है। लेकिन मध्य एशिया, दक्षिण पूर्व एशिया, पूर्वोत्तर एशिया आदि के प्राचीन साहित्य का अध्ययन कुछ दूसरी ही बात बताता है। यहां प्राचीन भारत की गरिमा की ठोस जानकारी है। प्राचीन भारत योग और अध्यात्म साधना में ही लीन नहीं था, अनेक भरतजन अपनी सांस्कृतिक अनुभूतियों को समूचे एशिया में भी फैलाने के लिए सक्रिय थे। इतिहासकार डॉ० राजबली पण्डेय ने 'प्राचीन भारत' में पुराणों के जरिए याद दिलाया है कि मत्स्य पुराण में भारत के उपनिवेश बताए गये हैं, जो समुद्र द्वारा एक दूसरे से अलग किए गए थे। शिवपुराण के अनुसार मनु के पुत्र नरिष्यंत के वंशज पश्चिमोत्तर दर्रों को पारकर उत्तर दिशा में गये और शक जातियों के पूर्वज हुए। इक्ष्वाकु पुत्र के वंशज सुमेरू के उत्तर के प्रदेश में गये और उनके ११४ वंशजों ने सुमेरू के दक्षिण प्रदेश में अपने उपनिवेश बनायें। वायु पुराण के अनुसार- आर्यवंशी प्रचेतस के १०० वंशजों ने पश्चिमोत्तर भारत से निकलकर उत्तर की यात्रा की और मध्यएशिया के राष्ट्रों पर अपना राज किया। पुराण इतिहास नहीं है। यूरोपीय तर्ज का इतिहास तमाम घटनाओं और राज्य व्यवस्थाओं का विवरण है। पुराणों में इन सबका सारतत्व होता है। पुराण अपने समय के प्रतिनिधि हैं। पुराणों के भीतर इतिहास की ढेर सारी सामग्री है। इतिहास की असाधारण शैली का विकास है पुराण। पुराणों के पहले रचे गए 'ब्राह्मणों' व 'आरण्यकों' में भी इतिहास की सामग्री है। लेकिन हम अपनी इतिहास सामग्री से प्रेरित नहीं होते। हमारे देश का इतिहास दूसरे बताते हैं, हमको कूपमण्डूक व पिछड़ी कौम बताते हैं और हम मान जाते हैं। हमारा इतिहासबोध कमजोर है। मनु ऋग्वेद में हैं, अथर्ववेद में हैं, ब्राह्मण ग्रन्थों में हैं, रामायण, महाभारत में है। ऐसा दीर्घकाल हमको चौंकाता करता है। हम 'मनु' को एक परम्परा का प्रवाह नहीं जान पाते। विश्वामित्र व वशिष्ट ऋग्वेद के अनेक मंत्रों के द्रष्टा रचयिता हैं। यही दोनों नाम रामायण में भी हैं। ऋग्वेद और रामायण के बीच लम्बा फासला है। हम समय का तालमेल नहीं बैठा पाते। हम सहज बुद्धि भी नहीं लगाते। हमारे साहित्य को आस्था बताने वाली शक्तियां जीत जाती हैं। ऋग्वेद वाले विश्वामित्र, वशिष्ठ मंत्रद्रष्टा हैं। रामायण में भी ऐसे ही नाम क्यों नहीं हो सकते? हमारे सबके नाम वाले सैकड़ों लोग आज भी हैं। वेद, उपनिषद्, रामायण, पुराण और महाभारत कल्पना नहीं इतिहास ही हैं। गीता में दर्शन की बहुतायत है लेकिन पहले अध्याय (श्लोक २ से ८) में अनेक राजाओं के नाम हैं - 'धृष्टदुम्न पांचाल राजा द्रुपद का पुत्र है, युयुधान सात्यकि है, राजा विराट है और स्वयं द्रुपद भी हैं। धृष्टकेतु चेकिस्तान, काशिराज पुरुजित्, कुन्तिभोज और शैव्य हैं।' हम इतिहास से आंख मूंदें तो सारा विवरण कोरी काव्य कल्पना है। कम्बोडिया का नाम पहले 'कम्बुज' था। कम्बुज राज्य के पहले यहां एक भारतीय राज्य था। चीनी उसे 'फू-नान' कहते थे। फूनान के आदिवासी प्रायः नग्न रहते थे, शरीर में गोदना (टेटू) बनवाते थे। यहां की शासक रानी लियू-यू ब्राह्मण परम्परा के विद्वान हुएन तियेन से पराजित हुई, दोनों का विवाह हो गया। उसने इस प्रदेश पर शासन किया। उसने भारतीय सभ्यता का प्रसार किया और वस्त्र धारण की परम्परा चलाई। अंग्रेजी तर्ज पर हम भारत के लोग कम्बोडिया पर ताना नहीं कसते कि हमने ही आपके देश को सभ्य बनाया। हुयेन तियेन नाम का व्यक्ति भारत का कौण्डिन्य है और रानी है सोमा। डॉ० राजबली पाण्डेय ने 'प्राचीन भारत' (पृष्ठ ४३७, विश्व विद्यालय प्रकाशन वाराणसी) में बताया है कि हुएन-तियेन शब्द कौण्डिन्य का ही चीनी रूपान्तर है।

कौण्डिन्य भारतीय थे। वह सीधे भारत से ही कम्बुज पहुंचे थे। उसके वंशजों ने यहां २०० ई० तक राज किया। दूसरे देश में राज करना बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण बात है - भारत से अति सुदूर भूखण्ड में जाने की इच्छा। इस इच्छा के पीछे छिपी वैदिक संस्कृति के प्रसार की मंगल कामना। सो कौण्डिन्य हमारी प्रेरणा और राष्ट्रीय स्वाभिमान के नायक हैं। वे मो० बिन कासिम, गोरी, गजनी की तर्ज पर नहीं गये, वे कोलम्बस की तरह भी व्यापारिक स्वार्थ खोजने नहीं पहुंचे। वे ईस्ट इण्डिया कम्पनी की तर्ज पर व्यापार करने नहीं गये। वे वैदिक संस्कृति का मधुकोश लेकर ही कम्बुज गये थे। वे हथियारबंद सेना लेकर नहीं, विश्व को परिवार जानने वाले वैदिक दर्शन को लेकर अकेले ही गये थे। कौण्डिन्य पर भारत को गर्व करना चाहिए। चीनी और कम्फूचियन पुरा कथाओं में कौण्डिन्य को अश्वत्थामा का शिष्य पुत्र भी कहा गया है। लेकिन हमारे इतिहासबोध में वे भूले बिसरे से भी कमजोर नायक हैं। बेशक इतिहासकारों ने उन्हें नहीं भुलाया लेकिन उन्हें उनकी प्रतिभा लायक सम्मान नहीं मिला। उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर निवासी डॉ० सुशील पाण्डेय ने कौण्डिन्य को पूरे हृदय से याद किया है। अपनी आत्यंतिक गहराइयों के साथ उन्होंने १८ सर्गों वाला खूबसूरत काव्यग्रन्थ 'कौण्डिन्य' लिखा। ऐसा काव्य सृजन आसान नहीं था। यों इतिहास को काव्य बनाना प्राचीन भारतीय परम्परा है। लेकिन एक भूलें बिसरे प्राचीन नायक की गाथा में नवजीवन भरना स्वयं को उसी तल पर जीने जैसा है। डॉ० पाण्डेय ने 'कौण्डिन्य' को पुनर्जन्म दिया है। स्वयं मां होकर। भारत की सांस्कृतिक अनुभूति के लिए सर्जना के ऐसे काम प्रायः बंद हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास में ऐसे ढेर सारे भूले बिसरे पात्र हैं। अगस्त्य भी ऐसे ही हैं। श्वेतकेतु ने विवाह संस्था को मजबूती दी थी। अथर्ववेद की अधिकांश अनुभूतियां अथर्वा की है। छान्दोग्य उपनिषद् में राजा जानश्रुति और एक मामूली शिल्पकार लेकिन ब्रह्मज्ञानी रैक्व की गाथा हैं। प्रश्नोपनिषद् के पिप्पलाद अद्भुत हैं, ऐतरेय ब्राह्मण के सर्जक ऐतरेय दर्शन के महानायक हैं। वृहदारण्यक उपनिषद् की मैत्रेयी, गार्गी हैं। कौण्डिन्य यहां भी हैं। यहां वे शांडिल्य के शिष्य हैं। प्राचीन साहित्य में कौण्डिन्य नाम का गोत्र भी है। भारतीय विश्वविद्यालय आर्यों को विदेशी हमलावर पढ़ाते हैं। वे उन पर १७००-१८०० ई० पूर्व के आसपास सिन्धु घाटी सभ्यता को नष्ट करने का आरोप भी लगाते हैं। वे उनके आगमन पर जोर देते हैं। वे आर्यों के बाहर जाने के उद्देश्यों पर ध्यान नहीं देते। मेसोपोटामिया में प्राप्त बोगाजकोई उत्कीर्ण लेखों में वैदिक देवों के नाम हैं। कम से कम १७०० बरस पहले इस क्षेत्र में वैदिक परम्परा का प्रभाव साफ है। कोई सत्ता किसी देवता या राजा का नाम यों ही नहीं डाल देती। इस अवधि के बहुत पहले ये देवनाम लोक प्रशंसा बने होंगे। फिर इनके प्रति श्रद्धा बढ़ी होगी। तभी इन्हें अभिलेख लायक लोक स्वीकृति मिली होगी। मूलभूत प्रश्न है कि ऋग्वैदिक देवों के ये नाम अन्य सुदूर देशों में पहुंचे कैसे? भारत के ही धुन के धनी लोगों ने तमाम यात्राएं कीं। विचार-विमर्श का दौर चला। वैदिक अनुभूति का प्रसार हुआ। डॉ० रामविलास शर्मा जैसे खांटी मार्क्सवादी ने 'पं० एशिया और ऋग्वेद' में ऐसे अनेक तत्वों की भौतिकवादी व्याख्या की है। उन्होंने आर्यों के बाहर जाने का तथ्यपरक उल्लेख किया है। कौण्डिन्य एक परम्परा है। ढेर सारे कौण्डिन्य भारत से बाहर गए थे, वैदिक संस्कृति का प्रसार करने। भारतीय संस्कृति और सभ्यता की धाक थी तब। लेकिन अब हम सब अमेरिकी यूरोपीय जूठन में ही मधु-स्वाद तलाश रहे हैं।

(लेखक उ.प्र. विधान परिषद के सदस्य हैं।)

डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित (पूर्व सुप्रातिष्ठ आचार्य हिन्दी, पुणे विश्वविद्यालय)– अठारह सर्गों में परिसमाप्त महाकाव्य की पृष्ठभूमि पर निर्मित इस सुष्ठु रचना के मूल में सहस्रों वर्ष पूर्व घटित काव्य-नायक वीरवर कौण्डिन्य के उस भारतीय सांस्कृतिक अभियान की जयगाथा अंकित है जिसके क्षीण से तंतु भारतीय प्राचीन से लेकर चीनी कम्पूचियाई पुराणों तक फैले हुए हैं, किन्तु कालक्षेप से लगभग विस्मृत हो गये हैं। प्राप्त कथा संकेतों की अत्यल्पता के बावजूद कथा-प्रवाह की सुसूत्रता की रक्षा करते हुए उसे अठारह सर्गों तक निर्बाध और रोचक बनाये रखना कुशल कवि-कर्म का परिचायक है।

०६-०२-२००३ ई०

डॉ० अमरसिंह वधान (निदेशक उच्चतर शिक्षा एवं शोध केन्द्र चंडीगढ़, पूर्व प्रबन्धक सिंडिकेट बैंक चेन्नई तमिलनाडु)– कौण्डिन्य कृति कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से महनीय है। इस कालजयी काव्य-रचना के माध्यम से जो भावी शोधकार्य, विमर्श एवं बहस के द्वार डॉ० पाण्डेय ने खोले हैं, वे कभी बन्द न होने वाले महाद्वार हैं।

२१-०७-२००३ ई०

डॉ० जितेन्द्रकुमार तिवारी (रीडर, प्राचीन इतिहास संत तुलसीदास स्नातकोत्तर महाविद्यालय कादीपुर सुलतानपुर)– डॉ० सुशीलकुमार पाण्डेय द्वारा विरचित "कौण्डिन्य" महाकाव्य को पढ़ने का सुयोग मिला। ऋषि कौण्डिन्य द्वारा भारतीय संस्कृति के विस्तार हेतु जो कष्ट सहे गये, उनका अनुभव इस महाकाव्य के पाठन से हो जाता है। यह कृति साहित्य और इतिहास दोनों दृष्टियों से कालजयी है।

११-११-२००९ ई०